संत समागम

(प्रेरक प्रसंगचित्र)

लेखक : श्री योगेश्वरजी

अनुवाद : प्रा. शशीकांत कोन्ट्राकटर

NOTICE

*

E-Book

Title : संत समागम

Language : Hindi

Version : 1.0

Pages : 101

Created : May 30, 2009.

*

NOTE

This e-book is a manifestation of our humble effort to present Shri Yogeshwarji's literary work in digital format. Due care has been taken in preparing the material of this e-book from its original print version. However, if you find any error or omissions, please let us know. We welcome your comments.

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

श्री योगेश्वरजी

(१५ अगस्त, १९२१ – १८ मार्च, १९८४)

"मनुष्य जीवन का एकमात्र ध्येय परमात्मा की प्राप्ति है ।"

प्रस्तावना

भारत धर्मपरायण देश है । उसे संतो की भूमि भी कह सकते है । अतीत काल से लेकर अद्यतन काल पर्यंत उसकी गोद में विविध रुचि व प्रकृति वाले स्वनामधन्य महापुरुषो का प्रादुर्भाव होता आया है । उनका समागम ईश्वर की परम कृपा से होता है और बडा सुखदायी होता है ।

मेरे आज तक जे जीवन में मुझे जो ज्ञात-अज्ञात, सिद्धावस्था प्राप्त या साधकावस्था में स्थित संतपुरुषों से मिलने का सौभाग्य मिला उनके रेखाचित्र इस पुस्तिका में मैंने अंकित करने का प्रयास किया है । मुझे आशा है कि उनके रेखाचित्र पाठकों को आकर्षित करेंगे, प्रेरणा और पथप्रदर्शन प्रदान करेंगे और साथ में भारत के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गौरव की अभिवृद्धि करने में सहायता करेंगे ।

इससे वाचको को किसी प्रकार से लाभ होता है तो मेरा श्रम सार्थक होगा ।

- योगेश्वर

* * *

अनुवादक का परिचय

श्री शशीकान्त कोन्ट्राकटर

बी. ए., एम. ए. (हिन्दी)

पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, श्रीमती. जे.पी.श्रोफ आर्टस कोलेज, वलसाड

पूर्व प्राध्यापक, एम.टी.बी.आर्टस कोलेज, सूरत

अनुवाद

महात्मा श्री योगेश्वरजी कृत गुजराती पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद

१) गीता का संगीत

२) गीता-दर्शन

३) ईश्वर-दर्शन

४) संत समागम

५) धर्म का साक्षात्कार

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

अनुक्रम

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१. बीच की लीजो पकडि !

संध्या का सुहाना समय है । गगन गुलाबी रंगो से आच्छन्न हो गया है, जिनका प्रतिबिंब गंगा के जल में गिरता है । गंगा के विशाल घाट पर भाँति-भाँति के लोग इकट्ठे हुए हैं, मानों मेला लगा है । हरिद्वार शहर का यह घाट कितना चित्ताकर्षक और रमणीय है । उसका दर्शन कर पाना खुशकिस्मती की बात है ।

घाट पर एक ओर कथा होती है तो दूसरी ओर उपदेश दिया जाता है । कहीं छोटी छोटी दुकान लगाये फूल बेच रहे हैं तो कहीं प्रवासी स्थायी या अस्थायी रुप से मंडली बनाये बैठे हैं । कतिपय जिज्ञासु घूम रहे है । बैसाख के इस महीने में गंगा में स्नान करनेवाले लोग भी कम नहीं है ।

ऐसे समय एक पंडितजी किसी ऊँचे मकान के दालान में बैठे हैं और बार-बार एक ही बात बोल रहे हैं – 'अगली छोडो, पिछली छोडो, बीच की लीजो पकडि ।'

यह सुनकर कई लोग वहाँ जमा हो गये । पंडितजी के शब्द सुनकर वे दंग रह जाते थे ।

भीड में से कतिपय यह कहने लगे – 'बूढा हो गया फिर भी अभी स्त्रियों का मोह नहीं मिटा ।'

'अरे भाई, बूढा हुआ तो क्या हुआ ? मोह अवस्था पर थोडा ही निर्भर रहता है ? वह तो बुढापे में भी हो सकता है ।'

'लडकियाँ बडी अजीब होती हैं, कोई मिलेगी तो पंडित का शिर तोड देगी ।'

'क्या दुनिया है ? तीरथ में आया है और गंगामैया के किनारे पर बैठा है, फिर भी उसका मन नहीं सुधरा ।'

लेकिन पंडितजी तो बार-बार बीच में रुककर उसकी रट लगा रहे थे - 'अगली छोडो, पिछली छोडो, बीच की लीजो पकडि ।'

कुछ प्रवासी तो ऐसे थे जो पंडितजी की उस बात को तनिक भी महत्व न देते थे । पंडितजी के शब्द सुनकर अन्यमनस्क होकर वहीं से गुजरते थे ।

कुछ दिनों तक तो यह चलता रहा और नियमित रूप से निरंतर आनेवाले लोग उनके शब्द सुनने के अभ्यस्त हो गये । लेकिन एक शाम को पंडितजी बडी मुसीबत में फँस गये ।

उस वक्त जब वे अपनी प्रिय पंक्ति को दोहरा रहे थे, तीन लडकियाँ उनके सामने से गुजरी । पंडितजी के शब्द सुनकर उनकी त्योरियाँ बदल गई ।

विशेषतः मझली लडकी को बहुत बुरा लग गया । वह फौरन बोल उठी – 'ऐ बूढे, ऐसा बोलने में तुझे शर्म नहीं आती ?'

दूसरी बोली - 'तेरा काल आ गया है क्या ?'

तीसरी ने कहा - 'अभी तेरा सर फोड देती हूँ ।'

और बूढे पंडित पर चप्पलों की वर्षा होने लगी । ...

देखते ही देखते वहाँ लोगों की भीड जमा हो गई ।

'क्या है ? मामला क्या है ?'

'क्या हुआ ?'

'होगा क्या ?' लडकी चप्पल पहनती हुई बोली - 'ये मुझे पकडके ले जाना चाहता है । देखूँ तो सही मुझे कैसे ले जाता है ! है तो बूढा लेकिन उसने मेरी दिल्लगी की ।'

कुछ लोग पंडितजी को जलीकटी सुनाने लगे, कुछ डाँटने लगे ।

वहाँ पुलिस भी आई ।

पंडितजी ने शांति से कहा, 'मैंने इन लडकियों से कुछ कहा ही नहीं, ये मेरे पर बेकार गुस्से हो रही हैं ।'

लडकियाँ छेडी हुई नागिन की तरह बोल उठीं : 'एक तो मखौल उडाता था और पकडा गया तब सफाई पेश कर रहा है ?'

'क्या मैं सफाई दे रहा हूँ ?'

'तो फिर क्या कर रहा है ?'

'जो सही बात है वह बता रहा हूँ ।'

'क्या सही बात है ?'

'यह कि मैंने आपसे कुछ नहीं कहा ।'

'तो किससे कहा ?'

'किसीसे नहीं, मैं ऐसी मजाक क्यों करता ? मैं तो धरम की एक बात बता रहा था ।'

'धरम की बात !' लोगों को आश्चर्य हुआ ।

'हाँ, हाँ, धरम की बात,' पंडितजीने स्पष्टता करते हुए कहा : 'कुछ दिन पहले मैं गुजरात गया था । एक गुजराती संत वहाँ यह वाक्य बोला करते थे । उसने उसका अर्थ यह बताया था कि पहली बाल्यावस्था तो खेल-कूद और अज्ञान में बीत जाती है और पिछली वृद्धावस्था भी लाचारी तथा आसक्ति में ही काटनी पडती है । इसीलिए उन दोनों अवस्थाओं को छोडकर बीच में रहनेवाली युवावस्था में ही आत्मा का कल्याण कर लो । बीचवाली युवावस्था को ही पकड लो । मुझे यह बात बडी अच्छी लगी । तब से मैं उसी बात को उस सन्त के शब्दो में दोहरा रहा हूँ । उसमें किसी लडकी की दिल्लगी करने की बात ही नहीं है ।'

पंडितजी के स्पष्टीकरण से सब लोग ठंडे हो गये ।

लडकियाँ भी शांत हो गई और अपने बर्ताव के लिए अफसोस करने लगी ।

किसी बुद्धिमान ने कहा, 'बात कितनी भी अच्छी क्यूँ न हो, लेकिन साफ शब्दो में कहने की जरूरत है । नहीं तो नतीजा अच्छा नहीं निकलता ।'

दूसरे ने कहा, 'शब्द तो साफ थे लेकिन सार साफ नहीं था ।'

'दोनों साफ चाहिए ।'

'यह तो हम कैसे कह सकते है ?'

धीरे धीरे लोग बिखर गये ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२. शांभवी मुद्रा की सिद्धिवाले महात्मा

हिमालय स्थित उत्तराखंड के सुप्रसिद्ध तीर्थस्थान ऋषिकेश की मुलाकात लेनेवाले यात्रियों को गंगा के प्रशांत तट पर स्थित स्वर्गाश्रम एवं लक्ष्मणझूला की स्मृति अवश्य होगी । लक्ष्मणझूला से आगे चलते हुए स्वर्गाश्रम की ओर जाते हुए जो एकान्त शांत मार्ग आता है, वह बड़ा ही मनभावन और रमणीय है । दोनों ओर हरी-हरी पर्वतमाला से घीरी हुई तथा गंगा के विशाल तट से गुजरती वह राह अत्यंत सुहावनी लगती है । उसी रास्ते पर चलते हुए कुछ आगे बढ़ते हैं तो रास्ते में एक पेड़ आता है, जिसके नीचे एक तपस्वी महात्मा बैठे हुए दीखाई पड़ते है । उन पर दृष्टि पडने से एक प्रश्न मन में अवश्य उपस्थित होता है कि यह कोई जिन्दा मनुष्य है या पत्थर से तराशी गई प्राचीनकाल की ध्यानस्थ सुंदर शिल्प-मूर्ति ? उस प्रश्न के उत्तर की आशा में जब हम उसके करीब जाके देखते हैं तो हमारी शंका दूर हो जाती है और हमें प्रतीत होता है कि यह और कोई नहीं, एक जीवित ध्यानस्थ महात्मा की मंगलमयी मूर्ति है । यह जानदार प्रतीमा इतनी स्वस्थ व स्थिर है कि जब तक हम बहुत निकट नहीं जाते, वह पाषाण की प्रतिमा ही भासित होती है ।

अत्यंत अनुपम होता है उन महात्मा पुरुष का दर्शन । वे पद्मासन में बैठते है । गीता के छठे अध्याय में कहा गया है उसी तरह वे शरीर को सीधा करके बैठते है और उनकी दृष्टि दो भ्रमरों के बीच में स्थिर होती है । उनकी बडी-बडी, खुली और नूरानी अखियाँ काँच की पुतली सी दिखाई देती है । ये आँखें निर्निमेष है, तनिक भी हिलती नहीं है । अगर आप ज्यादा समय तक वहाँ ठहरते हैं और निरीक्षण करते हैं, फिर भी उनकी अवस्था में कोई अन्तर नहीं आता । उनका श्वास या प्राण थम गया है ऐसा लगता है । रास्ते से गुजरते हुए यात्री इन अत्यंत कृश शरीरवाले, जटायुक्त, आत्मलीन तपस्वी पुरुष को देखते हैं । कुछ लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक नमस्कार करते हैं तो कुछ दंग रहकर कुछ समय तक वहाँ बैठते भी हैं । कतिपय लोग उनके आगे फैले हुए कपडे पर पैसे भी डालते हैं । वे महात्मा आज बरसों से नित्य निरंतर उसी जगह, उसी तरह बैठे हुए दृष्टिगोचर होते हैं । न तो वे किसीके सामने देखते हैं, न किसीसे बात करते हैं । अपनी अंतरंग आत्मिक साधना के आनंद में डूबे रहकर अपने जीवन के सुनहरे समय को शांति से गुजारते हैं । उनकी आंतरिक भूमिका कितनी उच्च होगी इसके बारे में तो केवल अनुमान ही किया जा सकता है किंतु उनके सर्वसुलभ शंकारहित बाह्य दिखावे पर से इतना तो अवश्य समझ सकते हैं कि उन्होंने आसनसिद्धि हासिल की है, प्राणायाम का गहन अभ्यास किया है, ध्यान पर अच्छा काबू किया है । इसके अतिरिक्त योग में जिसे शांभवी मुद्रा के नाम से अभिहित किया जाता है, वह मुद्रा उन्हें सिद्ध है ।

शांभवी मुद्रा क्या है, यह जानने योग्य है । उस मुद्रा में योगी आसन पर स्थिरता से बैठकर, आँखे खुली रखकर, अपनी दृष्टि को दोनों भ्रमर के बीच क्रेन्द्रित करता है । इसका वर्णन भगवद् गीता में इस तरह किया गया है – भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक । उस वर्णन के अनुसार भ्रमरों के मध्य दृष्टि स्थिर करने से योगी का मन विशिष्ट विषयों, दृश्यों या पदार्थों से उपर उठकर उन्हें नहीं देखता । उनकी दृष्टि अंतर्मुख हो जाती है । प्रारंभ में इस मुद्रा का अभ्यास कष्टसाध्य लगता है, आँखे खींचती है, दुःखती हैं और उनसे पानी टपकने लगता है परंतु धीरज रखके, हिम्मत व उत्साह धारण करके, आगे बढने पर दृष्टि लंबे समय तक स्थिर होती है और सभी तकलीफें मिट जाती हैं । और फिर तो इसके गहन अभ्यास

से श्वास मंद होकर स्वतः शांत हो जाता है और साधक अतीन्द्रिय प्रदेश का या समाधि के मंगलमय मंदिर का द्वार खोलकर आगे बढता है । आँखे खुली रहती है परन्तु योगी को शरीर का होश नहीं रहता । योगी देहाध्यास से अतीत हो जाता है । वह भाँति भाँति के असाधारण अनुभव प्राप्त करता है । उन अनुभवों में सबसे श्रेष्ठ अनुभव है आत्मानुभव या आत्मानुभूति । वह भी उसके लिए सहजगम्य हो जाता है । समाधि अवस्था की प्राप्ति के लिए उन्हें आँखे मुँदनी नहीं पडती ।

भगवान रमण महर्षि ने उस अवस्था की प्राप्ति सहज रूप में की थी । उनके दर्शन करनेवाले और उनके आश्रम में रहनेवाले यह अच्छी तरह जानते हैं कि वे खुली आँख रखकर ही निश्चलता या स्थिरता प्राप्त कर समाधि में पहूँच जाते थे । समाधि अवस्था पर उनका संपूर्ण काबू था । फिर भी वे उस असाधारण अवस्था में प्रवेश करने के लिए शांभवी मुद्रा का आधार नहीं लेते थे ।

बरसों पहले पोल ब्रन्टन भारत के योगियों की खोज में भारतवर्ष में आए थे । दक्षिण भारत में एक एकांत शांत स्थान में रमण महर्षि जैसे ही खुली आँख ध्यानस्थ हुए योगी पुरुष से उनका समागम हुआ था, जिनके नैन काँच जैसे अचेतन दिखाई देते थे । इसी योगी का वर्णन उन्होंने अपनी प्रसिद्ध किताब 'ए सर्च इन सीक्रेट इन्डिया' के 'कभी न बोलनेवाले संत' नामक प्रकरण में किया है । ऋषिकेश की इस दिव्य भूमि में इन आत्मलीन ध्यानस्थ महात्मा पुरुष को देखकर उपरोक्त पुस्तक की याद आ जाती है । साथ ही उसमें निहित योगी का वर्णन स्मृतिपट पर उभरकर सामने आता है ।

घंटे पर घंटे गुजरते जाते हैं फिर भी महात्मा पुरुष का शरीर तनिक भी नहीं हिलता, उनकी आँख भी नहीं हिलती और गहन ध्यान की अवस्था कभी नहीं तूटती । ऐसा लगता है मानो उनका मन आत्मिक जगत की किसी अलौकिक अनुभूति के सागर में मस्ताना होकर गोता लगाकर एकाकार हो गया है । गोता लगाने के कारण उनको किसी महामूल्यवान मोती की प्राप्ति हुई है । परम अनुभव के प्रदेश में भौतिक वातावरण का कोई असर नहीं होता और विविध आघात-प्रत्याघात भी नहीं सताते । हिमालय की प्रशांत पर्वतमाला की तरह वे अडिग व अचल है । इर्दगिर्द फैली नीरवता और निर्मलता उनमें भी मूर्तिमंत होकर बैठ गई है । जिस तरह गंगामैया अपने दर्शन, स्पर्श एवं स्नान से सबको शांति प्रदान करती है उसी तरह उनके दर्शन भी आत्मिक पथ के प्रवासियों के लिए प्रेरक, शक्ति व शांतिप्रदायक सिद्ध होता है । साधनारत ऐसी उनकी उपस्थिति ही साधकों के लिए लाभकारक सिद्ध होती है ।

किसीके दिमाग में यह प्रश्न उठ सकता है कि आत्मसाधना में इतनी उन्नति प्राप्त करनेवाले वे महात्मा सुबह से शाम तक इस तरह रास्ते पर सब देख सके इस तरह क्यों बैठते है ? बाहर सबके सामने बैठने में प्रतिष्ठा का मोह क्या नहीं समाया है ?

हम उन्हें उत्तर देंगे कि बाहर सबके सामने बैठने में उनका प्रतिष्ठा का मोह ही जिम्मेदार है ऐसा नहीं समझना है । वे महात्मा पुरुष बजाय अपनी कुटिया में बैठने के, हमेशा बाहर आम रास्ते पर क्यों बैठते हैं यह तो वही जाने किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि इससे जाने या अनजाने एक महत्वपूर्ण हेतु सिद्ध होता है । उच्च कोटि के महान तपस्वी, साधक, योगी एवं महात्माओं के दर्शन की अभिलाषा से प्रेरित होकर कई यात्री हिमालय आते है । उनके लिए उच्च कोटि के सभी संतो के दर्शन मुमकीन नहीं होते । उनके समागम के लिए उन्हें पर्वत-पर्वत, जंगल-जंगल भटककर ढूँढना पडता है और फिर भी वे शायद ही मिलते है । जब कि ये महात्मा बाहर रहते हैं इसलिए उनका दर्शन सबके लिए सदैव सुलभ है । इसके अतिरिक्त एक और सत्य बात का पता भी इससे चलता है कि योग के या अन्य ग्रंथो में शांभवी

मुद्रावाले या समाधिनिष्ठ योगीओं के जो वर्णन उपलब्ध है वे नितांत सत्य है और इस जमाने में भी इसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । इस बात की प्रतीति भी हमें उन्हें निरखने से स्वतः हो जाती है । साधकों को इससे प्रेरणा और उत्साह प्राप्त होता है । वे इस तरह अन्य लोगों की सेवा कर रहें है । इस दृष्टि से देखा जाय तो उनका इस तरह आम रास्ते पर बैठना उचित जान पड़ता है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३. बदरीनाथ के सिद्धपुरुष बाबा बच्चीदासजी

आध्यात्मिक साधना के मार्ग में बाह्य शिक्षा की आवश्यकता क्या अनिवार्य है ? बाह्य शिक्षा आध्यात्मिक साधना में बाधक नहीं है परंतु इसके बिना भी साधना हो सकती है । अर्थात् साधना मार्ग में बाह्य शिक्षा अनिवार्य नहीं है । इस बात की प्रतीति आपको बाबा बच्चीदास के जीवन से होगी ।

बाबा बच्चीदास नितांत अशिक्षित थे । आधुनिक पाठशाला में उन्होंने अभ्यास नहीं किया था फिर भी साधना के मार्ग में वे आगे बढे थे । उनके मुख से जब अनुभवजन्य ज्ञान की बातें निःसृत होती तब सुननेवाले दंग रह जाते थे । वे सोच में पड जाते थे की इन महात्मा में एसा सर्वोत्तम ज्ञान कहाँ से आया ? किन्तु वह ज्ञान तो दीर्घ समय की सतत साधना और स्वानुभव प्राप्ति के फलस्वरूप प्रादुर्भूत हुआ था, इस सत्य की जानकारी भी उन्हें आसानी से हो जाती थी ।

भारत के धर्मशास्त्र-रचयिताओं ने गुरु की महिमा की भूरि भूरि प्रसंशा की है । अपने परम ज्ञानरूपी प्रकाश से शरणागत शिष्य के हृदयांधकार को सदा के लिए दूर करनेवाले और उसे दिव्य चक्षु प्रदान करनेवाले गुरु को शास्त्रों ने ब्रह्मा कहा है, विष्णु और महेश कहा है । इतना कहकर भी वे रुक न गये अपितु उन्हें परब्रह्म कहने के पश्चात् ही संतोष की साँस ली । इसके पीछे केवल अंधश्रद्धा, अतिशयोक्ति या भावुकता नहीं है परंतु यथार्थता है । द्वंद्वातीत, परमानंद स्वरूप, परमात्मदर्शी सदगुरू की शक्ति का जिन्होंने अपने जीवन में अनुभव किया है उन्होंने गुरू की महिमा का गान किया है - वह भी उनको अंजलि देने के लिए और अल्प मात्रा में । बाबा बच्चीदास को ऐसे ज्ञानमूर्ति, दिव्यात्मा और योगसिद्ध सदगुरू का समागम हुआ था ।

जब ये हिमालय के देवप्रयाग स्थान में रहते थे, तब बंगालीबाबा नामक एक सिद्ध पुरुष से उनकी मुलाकात हुई, जो बदरीनाथ की यात्रा करके लौटते हुए वहाँ आ पहुँचे थे । बच्चीदास उस वक्त एक छोटी-सी गुफा में रहते थे जो अलकनंदा और भागीरथी के सुंदर संगम पर स्थित थी । पहली मुलाकात में ही बंगाली बाबा ने उनके सुषुप्त संस्कारो को ताड़ लिया और उनके प्रति प्रेम प्रदर्शित किया । फिर तो बच्चीदासजी ने बडी श्रद्धा से और सोत्साह बंगाली बाबा की सेवा की । परिणामतः बंगाली बाबा प्रसन्न हुए और उन्होंने बच्चीदासजी को मंत्र दीक्षा-साधना की क्रिया बताई । बाद में गुरु की आज्ञानुसार बच्चीदासजी बदरीनाथ गये और वहाँ रहकर साधना करने लगे । उनका दिल साफ था । वे बड़ी श्रद्धा व लगन से साधना में जुट गये ।

बदरीनाथ की ठंडी असह्य होती है । नर और नारायण पर्वत के बीच फैली हुई इस भूमि में मनुष्य ज्यादा वक्त नहीं रह सकता, फिर भी बरसों तक बच्चीदासजी ने लगातार निवास किया । उसका कारण उनकी तीव्र वैराग्यवृति, नितांत एकांतप्रियता, प्रखर साधनापरायणता एवं तीव्र तितिक्षा को माना जा सकता है ।

इन विशिष्ट गुणों के बगैर वो शायद ही वहाँ रह सके होते । उस एकांत, शांत, सुंदर, स्वर्गीय प्रदेश में रहकर उन्होंने लगातार साधना की और अंत में शांति और सिद्धि प्राप्त की ।

उनके कारण बदरीनाथ की महिमा बढ़ गई । बदरीनाथ की यात्रा पर आनेवाले श्रद्धालु नरनारी उनके दर्शन को जाते और उनके सत्संग का लाभ लेते थे । अंतिम वर्षो में तो वे ज़ाडे में भी बदरीनाथ के आसपास ही रहते । वहाँ ऋषिगंगा एवं अलकनंदा के संगम के पास कुटिया में निवास करते थे ।

१९४४ में मैंने उसी कुटिया में उनकी मुलाकात ली । मैंने देखा की उनके मुख पर असीम शांति एवं आँखो में असाधारण दीप्ति और कृतार्थता की छाया थी । इससे लगता था की उन्होंने जीवन का ध्येय सिद्ध कर दिया हो । हमारे सामने वे शांतिपूर्वक बैठे थे । आत्मश्रद्धा, गुरुश्रद्धा एवं अनवरत पुरुषार्थ से साधक (इश्वरकृपा से) मानवजीवन की सार्थकता की कितनी उच्च कक्षा पर पहूँच सकता है इसकी प्रतीति उन्हें देखकर होती थी ।

उन्हें देखकर मेरे मन में उनके प्रति अत्यधिक आदर पैदा हुआ ।

'नर यदि करणी करे तो नारायण हो जाय' - यह बात संपूर्ण सत्य है, परंतु नर यदि पूर्ण श्रद्धाभक्ति से दिल खोलकर करणी करे तब न ? हजारों-लाखों लोग ऐसे हैं जो नारायण होने की बात तो जाने दीजिए, मानव होने का भी पुरुषार्थ सच्चे अर्थ में नहीं करते । अगर वे जीवन की महत्ता को समझकर बच्चीदासजी की भाँति प्रबल पुरुषार्थ करे तो अवश्य नारायण बन सके ।

कई संतपुरुष भक्तों या दूसरों को प्रभावित करने के लिए चमत्कार दिखाते हैं । मानव का एक वर्ग – बहुत बडा वर्ग – ऐसा है जो संतो के बाह्य चमत्कारों से चकाचौंध हो जाता है और उनसे प्रभावित हो जाता हैं । ऐसे चमत्कारप्रिय लोग पूछेंगे, 'बाबा बच्चीदासजी कोई चमत्कार करके दिखाते थे क्या ?' उनकी जिज्ञासावृति के जवाब में स्पष्टता कर दूँ की वे कोई चमत्कार नहीं करते । चमत्कार केवल आध्यात्मिक विकास के परिणामस्वरूप ही पैदा होता है, ऐसा नहीं है । इसके पीछे हस्तकौशल, तंत्रोपासना और अन्य विद्याएँ भी काम करती है । इसलिए ऐसे चमत्कारों से दंग रह जाने की आवश्यकता नहीं है ।

चमत्कार करने की शक्ति कोई बाजारू चीज या जादू-टोने के खेलों की तरह तमाशा दिखाने की या व्यापार करने की वस्तु नहीं है, की उसका प्रयोग जहाँ-तहाँ और जब-तब हो सके । जिनमें चमत्कार करने की सच्ची शक्ति होती है वे भी जहाँ-तहाँ उसका प्रदर्शन नहीं किया करते । ये तो कभी, अति अनिवार्य हो तब, सहज ही हो जाते है । सच देखा जाय तो यह पूरा जगत चमत्कार-रूप है ।

मानवशरीर ही सबसे बडा चमत्कार है । यह शरीर धारण करके जो काम, क्रोध, राग, द्वेष और अपनी प्रकृति के अन्य मलिन तत्वों के साथ लडकर विजयी बनते हैं, संसार के विषयों की मोहिनी में से मन को प्रतिनिवृत करके इश्वर के स्वरूप में जोड़ते है, मन व इन्द्रियों पर संयम स्थापित करते है और इस तरह ईश्वर-साक्षात्कार का अनुभव कर अज्ञान एवं अशांति में से छुटकारा प्राप्त कर धन्य बनते हैं, उनके द्वारा किया हुआ चमत्कार निराला, अमूल्य एवं आशीर्वाद स्वरूप है । यह चमत्कार ही अनुकरणीय व वांछनीय है । जीवन का श्रेय रूपी साधन के इस महान चमत्कार के सामने बाहर के कोई गहन-गुप्त चमत्कार की कोई बिसात नहीं है ।

बाबा बच्चीदासजी, अन्य आदर्श संतो की भाँति ऐसा चमत्कार करके धन्य बन गये थे !

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

४. माता आनंदमयी

ऐसा प्रश्न अक्सर जिज्ञासुओं की ओर से पूछा जाता है कि आध्यात्मिक उन्नति की साधना में पुरुषों की भाँति स्त्रियाँ भी आगे बढ सकती है या सिद्धहस्त बन सकती हैं क्या ? इस प्रश्न का आजके प्रगतिशील – स्त्री-पुरुषों की समानता के - युग में शायद ही कोई स्थान हो सकता है । फिर भी यदि प्रश्न पूछा ही जाता है तो उत्तर में मुझे कहने दो कि आद्यात्मिक तरक्की की साधना में स्त्री-पुरुष के कोई भेद नहीं है । वहाँ तो योग्यता देखी जाती है और इसीलिए आवश्यक योग्यतासंपन्न कोई भी स्त्री या पुरुष साधना का आधार लेकर आगे बढ सकते हैं और सिद्धहस्त भी बन सकते हैं । सामान्यतया हमारे यहाँ ऐसा विचार प्रचलित है कि आध्यात्मिक विकास की साधना में स्त्रियों को आसानी से सफलता नहीं हासिल होती ।

परंतु यदि तटस्थ या निष्पक्ष रुप से देखा जाय तो वैसा नहीं लगता । परिस्थिति इससे ठीक विपरीत प्रतीत होती है । नारियाँ अपने मृदु, भावमय एवं स्नेहिल ह्रदय के कारण, अपनी त्यागशीलता या समर्पण-भावना के कारण आत्मोन्नति या ईश्वर-साक्षात्कार के क्षेत्र में आसानी से और सचमुच ही आगे बढ सकती है, इसमें कोई संदेह नहीं । परंतु शर्त यह है कि उन्हें अवसर मिलना चाहिए और उस अवसर का अधिकाधिक सदुपयोग किया जाय इसके लिए पथप्रदर्शन मिलना चाहिए ।

अतीत काल में झाँकते है तो भारतवर्ष में शबरी, गार्गी, मैत्रेयी, जनाबाई और मीरां जैसी विदुषी नारीयाँ दिखाई देती है । वर्तमानकाल में भी ऐसी ज्ञानी, योगी या भक्त नारीयाँ है और हो रही है यह इस देश का परम भाग्य है । साधना की उच्च अवस्था प्राप्त सभी नारियाँ प्रसिद्ध नहीं होती । कतिपय अज्ञात अवस्था में भी रहती हैं फिर भी भारत के आध्यात्मिक गगन में जो इनेगुने, कतिपय असाधारण आकर्षक आभावाले नक्षत्रों का उदय हुआ है और जो अपने पावन प्रकाश से पृथ्वी को प्रकाशित करते है, उनमें माँ आनंदमयी का स्थान विशेष उल्लेखनीय एवं निराला है । प्रकाश के पथ में अभिरुचि रखनेवाले लोगोंने उनका नाम अवश्य सुना होगा ।

माँ आनंदमयी का जन्म बंगाल में हुआ था परंतु उनका कार्यक्षेत्र केवल बंगाल तक ही सीमित नहीं है । वे बंगाल की नहीं अपितु भारत की हैं । विशाल अर्थ में कहा जाय तो वे समस्त संसार की हो गई है । भारत के विभिन्न प्रदेशों में एवं भारत के बाहर विदेशो में भी उनके असंख्य प्रसंशक और अनुयायी है । कई साधक उनकी ओर आदर से देखते रहते है ।

वे ज्यादातर विचरण करती रहती है । उनका नाम भी सूचक है, नाम के अर्थानुसार वे सचमुच आनंदमयी है । उनके मुख पर अतीन्द्रिय अवस्था का आनंद छलकता हुआ दीख पडता है । मानो आनंद की प्रतिमूर्ति सामने ही बैठी हो ऐसा प्रतीत होता है । वही अलौकिक, विशुद्ध आनंद उनके नयन, वाणी एवं मुख से सहज ही निःसृत होता रहता है । उसे देख उनका नाम सचमुच सार्थक हो ऐसा लगता है ।

आध्यात्मिक साधना की उच्चोच्च अवस्था प्राप्त होने पर भी माँ आनंदमयी अत्याधिक सरल, निश्छल एवं विनम्र है । उम्र बडी होने पर भी उनका ह्रदय छोटी बाला की भाँति सरल है । श्वेत वस्त्र, लंबे-लंबे काले-काले बाल, मस्तक पर जटा, गौर वर्ण लेकिन शरीर थोडा स्थूल दिखता है । उनके निकट बैठना यह जीवन का एक अविस्मरणीय अनुपम सौभाग्य है ।

उनका व्यक्तित्व आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक होने के कारण असंख्य लोग उनके इर्दगिर्द इक्ट्ठे होते है । वे पढीलिखी नहीं है लेकिन आत्मज्ञानी है और साधना के मार्ग में तो आंतरिक ज्ञान, अनुभवजन्य ज्ञान ही महत्वपूर्ण होता है, इसमें क्या शक है ? ऐसा ज्ञान आवश्यक एवं अमूल्य माना जाता है । उनके ज्ञानालोक से प्रेरित व प्रभावित होकर बडे-बडे पंडित, प्रोफेसर एवं साक्षर उनके सत्संग एवं पथप्रदर्शन से लाभान्वित होते है ।

माँ आनंदमयीने विवाहित जीवन में प्रवेश किया है । उनके पति बरसों तक उनके साथ रहते थे । गृहस्थाश्रम में रहकर भी वे उनसे अलिप्त रहे । दैहिक भोगोपभोग की ओर उनका मन नहीं लगता था । उनको तो आत्मविकास में ही दिलचस्पी थी और यही कारण है कि उन्होंने अपने पति को भी साधनापरायण बनाया, उनके हृदय को जीत लिया । जब पति का देहांत हो गया तो उनके सभी लौकिक बंधन तूट गये और वे अकेले ही विचरण करने लगे ।

सादगी, स्नेह तथा अपरिग्रह की प्रतिमूर्ति समान माँ आनंदमयी सांप्रत भारत के संतो में महत्वपूर्ण मूर्धन्य स्थान रखते हैं । नारी होने से उनका मूल्य ओर भी बढ़ जाता है ।

नारीयाँ आत्मविकास की अधिकारीणि नहीं है, आत्मिक क्षेत्र में उनका कोई योगदान नहीं है ऐसा माननेवाले स्त्रीपुरुषों के लिए उनका जीवन एक प्रेरणा-स्त्रोत के समान है । मा आनंदमयी अपने जीवन द्वारा सिद्ध करती है कि आत्मिक मार्ग में नारी आगे बढ़ सकती है इतना ही नहीं, उच्चोच्च पद पर आसीन हो सकती है ।

यों तो वे योगमार्ग की उपासिका है पर उनका हृदय भक्त का है और इसीसे भजनकीर्तन में उनकी विशेष रुचि है । नाम संकीर्तन उनका प्रिय विषय है । संसार के विषय उन्हें लुभा नहीं सकते । उनका अंतर कमल की भाँति अलिप्त रहता है । भोगविलास के वातावरण में रहने पर भी त्याग के आदर्श से वे वंचित नहीं है । इसी संदर्भ में उनके जीवन की एक छोटी-सी घटना याद आती है ।

सन १९५६ के जून महिने की बात है । माँ आनंदमयी उस समय सोलन स्टेट के राजा के निमंत्रण से सीमला हिल्स के प्रसिध्ध स्थान सोलन में पधारी थी । उस वक्त मेरा और उनका आकस्मिक मिलाप हो गया । कुछ दिन उनके साथ रहना भी हुआ । इस बीच एक बार रात को प्रायः दस बजे उनके पास एक मध्यम वर्ग का आदमी आया और उसने कहा, 'माताजी, आपके लिए यह साडी लाया हूँ ।'

माताजी कमरे में चहलकदमी कर रही थी, रुक गई और बोली, 'साडी लाये हो ? मेरे पास तो है । अतिरिक्त लेके क्या करूँ ?'

'साडी तो आपके पास होगी ही । आपको भला किस चीज की कमी है ? मैं तो यह प्रेम से लाया हूँ । स्वीकारोगी तो मुझे खुशी होगी ।'

इतना बोलते हुए उस सज्जन की आँखे गिली हो गई । वे ज्यादा बोल न सके । माताजी का दिल पिघल गया । उन्हों ने वह श्वेत साडी ले ली ।

अंदर के कमरे में जाकर उन्होंने वह साडी पहन ली और बाहर आई । उनके हाथ में पहले पहनी हुई साडी थी । उसे अर्पण करते हुए कहने लगी, 'यह साडी तुम ले लो । जरुरत से ज्यादा साडीयाँ इकठ्ठी करके मुझे क्या करना है ? आवश्यकता पडने पर परमात्मा देता है ।'

उस सज्जन ने साडी ले ली, यूँ कहो उसे लेनी पडी । इस प्रसंग का प्रभाव मुझ पर बहुत पडा । प्रसंग छोटा था मगर उसका संदेश बडा था । इस घटना से माँ आनंदमयी की त्याग-भावना पर प्रकाश पडता है । आज भी मैं उसे कैसे भूल सकता हूँ ?

माँ आनंदमयी प्रवचन नहीं करती । प्रश्नों के उत्तर देती है । मीतभाषिणी होकर अपनी उपस्थिति से ही शांति प्रदान करती है, प्रेरणा व पथप्रदर्शन देती है । उनका शांत समागम भी जीवन का पाथेय बन जाता है और जीवन में क्रांति पैदा कर देता है ।

उनकी आध्यात्मिक प्रेम-परब अनेकों के लिए आशीर्वाद समान है । शांत रहकर भी अत्यधिक महत्वपूर्ण काम करती है । भारत के आध्यात्मिक इतिहास में वे अमर हैं और रहेंगी ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

५. अदभुत गुरु

हिमालय का पुराण प्रसिद्ध उत्तराखंड का प्रदेश और उसमें स्थित बदरीनाथ का वह पावन प्रदेश । जिसने उस प्रदेश को देखा है वह जानता है कि वह प्रदेश कितना शांत, रमणीय, प्रेरक, आहलादक और प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है ।

महर्षि व्यास, नारद और अन्य अनेक समर्थ संत-महात्मा की साधना से गौरवान्वित वह प्रदेश अलौकिक आध्यात्मिक परमाणुओं से परिपूर्ण है । उसका वायुमंडल ही निराला है और आज भी वह प्रदेश उतना ही रम्य एवं सजीव लगता है ।

एक ओर नर पर्वत और दूसरी ओर नारायण पर्वत । दोनों के बीच स्थित बदरीनाथपुरी इतनी रमणीय लगती है कि पूछिये मत । उस पुण्यप्रदेश में अलकनंदा नदी बहती है । उसका पानी इतना ठंडा है कि उंगली से उसका स्पर्श भी न कर सके । लेकिन कुदरत की कला तो देखिये । उसी नदी के किनारे पर उबलते हुए गर्म पानी के पाँच कुंड है ।

उसी अलकनंदा नदी पर, कुंड के सामने कुछ कुटिरें है जिन्हें काली कामलीवाला की संस्था की ओर से निर्मित किया गया है । इतनी दूर आये हुए यात्री को संतो के दर्शन करने की इच्छा हो ही जाती है । इसी इच्छा से प्रेरित होकर वे उन कुटिरों की मुलाकात लेते हैं, संतो से समागम करते हैं और सदभाग्य से यदि कोई अच्छे संत मिल जाते हैं तो अपनी यात्रा को सफल समझते हुए उनके सत्संग का लाभ उठाते है ।

बरसों पहले जब हमने बदरीनाथ की यात्रा की थी उस वक्त संतसमागम की कामना से प्रेरित होकर उन कुटिरों की मुलाकात ली थी । उस समय वहाँ रहनेवाले में से कोई भी उच्च कोटि का न लगा परंतु एक संत अपवाद स्वरूप दिखाई दिये जिन्होंने हमारा ध्यान बरबस खींच लिया ।

छोटी सी कुटिया में जब हम प्रवेशित हुए तो वे शांति से बैठे थे । उन्होंने सस्मित हमारा स्वागत किया और हम उनके निकट बैठ गए । संतपुरुष सीधे-सादे थे । उनकी उम्र करीब चालीस साल थी । उनकी कुटिर में न तो कोई चित्र था न मूर्ति किंतु उनके सामने जो चीज़ पडी थी उसने हमारा ध्यान आकर्षित किया ।

एक छोटी-सी मेज पर एक रुमाल था जिस पर एक बोतल और एक डिबिया थी और उसके आगे एक अगरबत्ती जल रही थी ।

हमने जब उस चीज का अर्थ पूछा तो उन्होंने शांति से उत्तर दिया, 'यह बोतल और डिबिया हमेशा मेरे साथ रहते है और मेरे गुरू का काम करते है । दत्तात्रेयने जिस तरह चौबीस गुरु किये थे उसी तरह ये वस्तुएँ भी मेरे गुरु के समान है । अतएव मैं मेरे पास रखता हूँ और उनकी पूजा करता हूँ । ये मुझे सदैव प्रेरणा देती है और मुझे हमेशा जाग्रत रखती है ।'

हमने पूछा, 'कैसे ?'

'बोतल में गंगाजल है । वह मुझे हमेशा याद दिलाता है कि जीवन को भी वैसा ही निर्मल व पारदर्शक बनाना चाहिए । उसमें बुरे विचार, भाव या कुकर्मो की गंदकी नहीं रहनी चाहिए । और इस डिबियाँ के पीछे भी एक इतिहास है । सुनेंगे आप ? इसमें भस्म है वह भस्म मेरी पत्नी की है । उसकी मृत्यु के बाद स्मशान में से ही भस्म लेकर मैंने संसार त्याग किया । यह भस्म मुझे हमेशा जाग्रत

रखती है और उसकी सहायता से मैं ईश्वरपरायण रह सकता हूँ । यह मुझे संदेश देती है कि संसार में जो कुछ भी है यह सब क्षणभंगुर है और विनाशशील है । केवल ईश्वर ही सत्य है, चिरंतर है, सुखस्वरूप है और उसको पहचानने से ही शांति मिल सकती है । इस तरह गंगाजल और भस्म मुझे प्रेरणा प्रदान करते है । इसलिए इन दोनों को जहाँ भी जाता हूँ वहाँ मेरे आगे रखता हूँ और पूजता हूँ ।'

हमें उन महापुरुष के लिए आदर पैदा हुआ । मनुष्य यदि सीखना चाहे तो किससे और क्या नहीं सीख सकता ? समस्त संसार उसके लिए एक विशाल विद्यालय बन जाता है । हमें इस बात की प्रतीति हुई ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

९. नित्यानंदजी का असाधारण अनुग्रह

परमात्मदर्शी महापुरुषों के दर्शन-अनुग्रह का लाभ बडी मुश्किल से मिलता है । पुण्यपुंजवाले किसी असाधारण मनुष्य को ही ऐसा लाभ उपलब्ध होता है । उनमें जो अलौकिक शक्ति छिपी रहती है, वह गहन एवं अनोखी रीति से कार्य करती है, जिसे समझना आसान नहीं । समझदार आदमी भी इसमें गलत साबित हो जाते हैं और अधकचरे अभिप्राय देते हैं । ऐसे महापुरुषों को पहचानना और पहचानने के बाद उनमें श्रद्धाभक्ति को बनाये रखना और भी कठिन होता है । उनके बाह्य रूपरंग से उनकी लोकोत्तरता की परख करने में लोग ज्यादातर गलती कर बैठते है, किन्तु जो उनको परख लेते है, उनसे प्यार कर बैठते है । वे उनके न्यूनाधिक अनुग्रह से कृतकृत्य हो जाते हैं ।

बंबई के निकट व्रजेश्वरी के पास गणेशपुरी में ऐसे ही प्रातःस्मरणीय समर्थ महापुरुष निवास करते थे, जिनका नाम था महात्मा नित्यानंदजी । उनके संसर्ग में आनेवाले अधिकतर आदमीयों को उनकी योग्यता का पता नहीं चलता था । वे उन लोकेषणाप्रिय महात्माओं में नहीं थे जो यह चाहे कि लोग उन्हें जाने-पहचाने । लोगों पर सिक्का जमाने वे चमत्कारों का सहारा नहीं लेते । वे मितभाषी थे और जनसंपर्क से दूर ही रहते थे ।

उनके बाह्य दिखावे से तनिक भी प्रतीत नहीं होता कि वे उच्च कोटि के महात्मा थे । उनकी आँखे बडी तेजस्वी और लाक्षणिक थी । उन्हें देखकर सहज कहा जा सकता था कि उन्होंने अपनी आत्मा के रहस्यमय जलनिधि में गहरा गोता लगाकर आत्मानुभूति रूपी अनमोल मोती प्राप्त कर लिया है और वह सनातन शांति, जिनके लिए संसारी साधक आश लगाते हैं, परिश्रम करते हैं, तडपते हैं, हासिल कर ली है ।

महापुरुष के मूल्यांकन में उनकी आँखे व मुखाकृति का बडा महत्व होता है जिन्हें झाँककर हम उनका परिचय प्राप्त कर सकते है ।

नित्यानंदजी का लोगों के साथ बर्ताव बडा विचित्र था । कभी कभी तो वे दर्शनार्थियों को गालियाँ देते और पत्थर भी मारते । धन एवं दुन्यवी इच्छावाले और सट्टा खेलकर रातोरात धनवान बनने की लालसावाले लोग उनके पास आकर उनकी शांति में खलल पहुँचाते तो स्वामीजी उसके सिवा और करते भी क्या ? वे जो कुछ भी करते, उनका परिणाम प्रायः अच्छा ही आता ।

संसार में विभिन्न रुचि और प्रकृतिवाले लोग रहते हैं । केवल अपनी लालसा-पूर्ति के लिए सब लोग वहाँ नहीं जाते । आत्मविकास की कामनावाले लोग भी ऐसे समर्थ महापुरुष के दर्शन-सत्संग का लाभ लेने जाते है । ऐसे साधक भी कभी उनके पास आ जाते ।

ऐसे एक साधक की बात जानने योग्य है । वह साधक जवान था और उसे योगसाधना में गहरी दिलचस्पी थी । पिछले कुछ सालों से उसने अष्टांगयोग की साधना शुरू की थी । ध्यानयोग की साधना द्वारा समाधि का आनंद प्राप्त कर अंत में आत्मसाक्षात्कार करने की उसकी अभिप्सा थी । इसकी पूर्ति के लिए वह नियमित रूप से सच्ची लगन से अभ्यास करता था लेकिन उसमें सफल न हो सका था । बरसों के परिश्रम के बाद भी उसका मन शरीर में ही भटकता रहता । देहाध्यास से उपर उठकर अतिन्द्रिय अवस्था की अनुभूति न होने से वह चिंतातुर रहा करता था । उसने सोचा की अगर किसी सिद्धपुरुष का

मिलाप हो और उनकी कृपा हो तो शायद उसकी मनोकामना पूर्ण हो सकती है । इन दिनों उस युवक को गणेशपुरी में रहनेवाले स्वामी नित्यानंदजी के पास जानेकी इच्छा हुई ।

मगर नित्यानंदजी तो किसीके साथ बोलते ही नहीं थे । बहुत सारे दर्शनार्थी दर्शन के लिए आते फिर भी वे तो उदासीन ही रहते । उस दिन बहुत समय बीत गया फिर भी वह युवक बैठा रहा । वह तो किसी भी तरह उनकी कृपा प्राप्त करना चाहता था और उसे आत्मविश्वास था ।

जैसे मूक एवं सच्चे ह्रदय की पुकार परमात्मा को पहुँचती है उसी तरह कृपा के सागर समान संतो तक नहीं पहुँचती ऐसा कौन कहता है ?

वह विरक्त महात्मा युवक के दिल की बात समझ गये । तुरन्त खडे हो गये और रोषपूर्वक बोले, 'यहाँ क्यों आया ?'

युवक को लगा वे महात्मा कम-से-कम मेरे साथ बोले तो सही, फिर चाहे रोष में ही बाले हो । ऐसा कहा जाता है की 'देवता और संतपुरुष का क्रोध भी वरदान और आशीर्वाद समान होता है ।' अतः नित्यानंदजी का क्रोध मेरे लिए मंगलमय साबित होगा । ऐसा मानकर वह टस से मस न हुआ, वहीं खडा रहा । वह यह जानता था कि नित्यानंदजी अंतर्यामी है इसलिए उन्हें कुछ बताने की आवश्यकता नहीं है । अगर उनमें ऐसी (मन के विचार जान लेने की) शक्ति न हो तो फिर उनसे अपनी बात का निरुपण करने से क्या लाभ ? लेकिन युवक की धारणा व श्रद्धा फलवती हुई । नित्यानंदजी आगबबूला हो गये । उस युवक का हाथ पकडते हुए उन्होंने कहा, 'यहाँ क्यों आया ? यहाँ दृष्टि लगा, दृष्टि लगा, प्रकाश, प्रकाश, आनंद, आनंद ! भाग, भाग यहाँ से ।' और उन्होंने धक्का मारा ।

उपदेश या संदेश देने की यह कैसी अजब रीति ? परंतु उस युवक को कोई शंका पैदा न हुई । उसमें उसे स्वामीजी के आशीर्वाद का दर्शन हुआ । उसको यह पद्धति पसंद आई । ठीक दूसरे ही दिन, प्रतिदिन की तरह ध्यान में बैठा तो उसने रोज से भिन्न अवस्था का अनुभव किया । उसका मन एकाग्र हो गया और आज्ञाचक्र में प्रकाश का दर्शन हुआ । कुछ ही वक्त में उसे समाधि का अनुभव हुआ । तुर्यावस्था के बीच आनेवाला बंध द्वार खुल गया । इस प्रसंग से आपको पता चलेगा कि महापुरुष का दर्शन, स्पर्शन व संभाषण उस युवक के लिए कितना श्रेयस्कर सिद्ध हुआ !

नित्यानंदजीने अज्ञात रूप से ऐसे कई साधकों को सहायता की होगी यह कौन कह सकेगा ? उनका बाह्य दिखावा नितांत साधारण होते हुए भी उनकी आत्मशक्ति असाधारण थी इसमें क्या संदेह ? यह घटना इसी बात की परिचायक है । ऐसे प्रातःस्मरणीय महापुरुष को हम मन ही मन वंदन करें यह सर्वथा उचित है ।

जो लोग उनके पास धन-वैभव, संतानप्राप्ति, नौकरी-धंधा और रोगनिवारण जैसी लौकिक कामनाओं से प्रेरित होकर गये होंगे उन्हें मानवजीवन में नयी चेतना जगानेवाली उनकी अजीब शक्ति का खयाल भी कैसे आयेगा ? अगर वे उस शक्ति को समझते तो उसके द्वारा अपनी आत्मशक्ति जगाकर आत्मकल्याण कर सकते ।

मनुष्यजीवन की यह सबसे बडी करुणता है कि हम महापुरुषों के पास केवल दुन्वयी स्वार्थ के लिए जाते हैं, आत्मा के मंगल या कल्याण के लिए नहीं जाते । हमारी ऐसी वृति या प्रवृत्ति को महात्मा

यदि परिपोषित करें, प्रोत्साहित करें तब तो करुणता और भी अधिक बढ़ जाती है । ज्ञानी कवि अखा के शब्दो में कहें तो ऐसे महापुरुष सबकुछ भले ही हरे, पर धोखा नहीं हरते ।

नित्यानंदजी ने जिस शक्ति का प्रदर्शन किया उसका उल्लेख योग के ग्रंथो में आता है । तदनुसार महापुरुष अपने दर्शन, स्पर्शन, संभाषण और संकल्प के द्वारा दूसरों की सुषुप्त शक्ति को जागृत कर सकते है और जागी हुई शक्ति को आगे बढाते हैं ।

श्री रामकृष्ण परमहंस के जीवन की यह बात बडी प्रसिद्ध है कि गुरु तोतापुरी ने उनकी दो भ्रमरों के बीच काँच का टूकडा दबाकर उन्हें समाधि अवस्था की अनुभूति कराई थी । दो भ्रमर के मध्य के प्रदेश में नजर स्थिर करने का संदेश भी योग में बडा महत्वपूर्ण है । इस बारे में एक और बात भी विशेष याद रखने योग्य है कि महापुरुष और योगी-महात्मा हमारे जीवन के विकास में हमें सहायता करेंगे, मार्ग दिखायेंगे या प्रेरणा प्रदान करेंगे किन्तु इसके लिए आवश्यक भूमिका हमें तैयार करनी पडेगी, साधना तो हमें करनी ही पडेगी । सच्ची लगन और उत्साह से साधना करनेवाला ही लंबे समय के बाद कोई ठोस चीज प्राप्त कर सकेगा । अतः साधको को किसी दूसरे पर संपूर्ण आधार रखना नहीं चाहिए । प्रथम आत्मकृपा प्राप्त करने से बाद में महापुरुष की कृपा, गुरुकृपा एवं ईश्वरकृपा आखिरकार मिल ही जाएगी ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

७. दिया कब जलाओगे ?

उत्तराखंड की पुराणप्रसिद्ध दिव्य भूमि की यात्रा करने कई लोग आते हैं जिनमें जिज्ञासु, पर्यटनप्रेमी, धर्मश्रद्धालु, जीवनश्रेय की साधनावाले यात्रियों का समावेश होता है । विशेषतः वे लोग ग्रीष्म ऋतु में उस देवभूमि के दर्शन के लिए निकल पडते है । इनमें कतिपय ईश्वरप्रेमी व बैरागी भी होते है जिन्हें देखकर हमें खुशी होती है, जिनसे समागम करने की इच्छा होती है । ऐसा समागम अत्यधिक लाभकारक सिद्ध होता है अथवा तो इससे जीवनोपयोगी सामग्री भी मिल जाती है ।

ऐसे एक सुखद समागम की स्मृति हो आती है । मुझे एक बिल्कुल साधारण दीखनेवाले पुरुष की याद आती है जिनका असली नाम कोई नहीं जानता । उन्हें बाबाजी कहकर पुकारते थे । इनके समागम में आनेवाले को उनकी सामान्य देह में छीपी महान आत्मा का पता चल ही जाता । बदरीनाथ की यात्रा में उनका परिचय होने से वे मुझे मिलने ऋषिकेश के मेरे निवासस्थान पर आए । मैंने उनसे पूछा, 'यह भूमि आपको कैसी लगी ?'

'बहुत ही सुंदर,' इन्होंने उत्तर दिया, 'मैं अब हमेशा के लिए यहाँ रहना चाहता हूँ, घर वापस नहीं जाना है । मेरा वैराग्य पक्का है ।'

मैंने पूछा, 'आपके वैराग्य का क्या कारण है ?'

उन्होंने बडी गंभीरता से कहना शुरू किया, 'कारण बडा मामूली है ।'

'मामूली ?'

'हाँ, मामूली ही कह सकते है फिर भी उसने मेरी जिंदगी में क्रांति कर दी है ।'

'आपके गुरु ?'

'मैंने एक लडकी को गुरु माना है ।'

'लडकी को ?'

'हाँ, क्यों नहीं ? क्या लडकी को गुरु नहीं माना जा सकता ? जो हमारे जीवन में से मोहांधकार को दूर कर प्रकाश फैलाता है वही गुरु है । मैं तो ऐसा मानता हूँ । सुनिये :

'मैं एक बडा वकील था – बुद्धिमान वकील । एक बार अटपटे मुकद्दमे के कागज लेकर घर जा रहा था कि रास्ते में एक मकान में से आवाज आई : 'पिताजी, दिया जलाओ न ! अंधेरा छा गया है । दीया कब जलाओगे ?'

आवाज सुनकर मैं खडा रह गया । बाहर सब जगह अंधेरा हो गया था, मुझे मालूम था । इस बीच लडकी फिर बोली, 'पिताजी, दिया जलाओ न ! दिया कब जलाओगे ?'

इन शब्दों के उत्तर में पिताने दिया जलाया । यह देख मैं आगे बढा । परंतु मेरे दिमाग में तूफान शुरू हुआ । मुझे महसूस हुआ कि मेरे जीवन में भी अंधेरा है । आज पर्यंत संसार के नश्वर पदार्थो के पीछे भागकर छलकपट करने में और असत्य एवं अनीति का आधार लेने में कोई कसर नहीं छोडी । साठ साल हुए, अब तो जीवन की संध्या हो गई । अब कहाँ तक छल-छद्म करूँ ? अब तो मुझे जागना चाहिए और जीवन में ज्ञान का, निर्मलता का, या परमात्म प्रेम का दिया जलाना चाहिए ।

उस लडकी के शब्दों ने मेरी जिन्दगी में क्रांति कर दी । मेरी आत्मा जाग उठी । मुझे लगा – शेष जीवन सत्कर्मो में, ईश्वर-स्मरण में और शांति में बिताना चाहिए । काल कब आएगा कौन जानता है ? घर और संपत्ति की व्यवस्था करके थोडे ही समय में इस प्रदेश में रहने की इच्छा से मैंने गृहत्याग किया । वह लडकी मेरे जीवन को जगाने का काम कर गई ।'

उनकी बात सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई । प्रसंग कितना भी साधारण क्यों न हो, पर वह मनुष्य के जीवन को कब परिवर्तित कर देगा, कहा नहीं जा सकता । बाबाजी संन्यासी न थे फिर भी आदर्श त्यागी थे । गंगातट पर रहकर बरसों तक जप-तप में मन लगाया, लोगों की मूक सेवा की और जीवन के पिछले सालों को अच्छी तरह बिताने के संतोष के साथ शरीर छोड जिया । अंधेरा तो सबके जीवन में है किन्तु इस तरह दिया कौन जलाता है ?

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

८. अमरिकन लडकी

भक्त कवि निष्कुलानंद ने ठीक ही कहा है 'त्याग न टके रे वैराग्य विना' अर्थात् बैराग्य के बिना त्याग नहीं टिकता । भेष तो वैरागी का लेते है किन्तु जीवनध्येय छूट जाता है । ज्यादातर संन्यासीयों की यही अवस्था है । अन्य साधकों के बारे में भी ऐसा ही होता है । फलतः वे अपने जीवन को सफल व सार्थक नहीं कर पाते ।

त्याग, संन्यास व एकांतिक जीवन आकर्षक है, आदरणीय है, परन्तु उसके पीछे बैराग की पृष्ठभूमिका आवश्यक है । ऐसे व्यक्ति को संन्यास के लिए आवश्यक योग्यता प्राप्त करने में लग जाना चाहिए । आज से लगभग तीन साल पहले अपूर्ण योग्यतावाले जिज्ञासु अमरिकन सज्जन ऋषिकेश में आ बसे थे । वे परिचय होने पर मुझे बार-बार मिलने आते । वे अत्यंत धनवान थे । वे रेशमी गेरुआ रंग का कुर्ता पहनते थे । उन्हें दर्शन व योगसाधना में दिलचस्पी थी । देश में घुमकर अनेक ज्ञात-अज्ञात संतपुरुषों के समागम का उन्होंने लाभ लिया था ।

एक बार रात को जब वे मुझे मिलने आए, उन्होंने मुझसे पूछाः 'क्या भारत में किसी उच्च कोटि के शक्तिसंपन्न महात्मा विद्यमान है ?'

मैंने कहा, 'क्यों नहीं ? जिसके दिल में ऐसे महात्माओं के मिलन की लगन है, उन्हें वे मिल ही जाते हैं ।'

कुछ देर के बाद वे फिर बोले, 'मेरा विचार किसी योग्य गुरु के पास संन्यास लेने का है । मैं गेरुआ कुर्ता तो पहनता हूँ मगर मैंने विधिपूर्वक संन्यास नहीं लिया ।'

मैंने कहा, 'संन्यास कोई लेने की चीज नहीं है, वह किसी को दिया नहीं जा सकता । वह तो स्वतः उगनेवाली वस्तु है । संन्यास न तो सौदा है, न कोई व्यापार; वह तो जीवनविकास की आभ्यन्तर अवस्था है । फिर भी यदि आप विधिपूर्वक संन्यास लेना चाहते है तो अभी न ले ऐसी मेरी सलाह है ।'

'कारण ?'

'कारण यह कि आपके हृदय में उसके लिए आवश्यक वैराग्य का अभाव है ।'

'मेरे हृदय में गहरा वैराग्य है ।'

'बिलकुल नहीं । कह दूँ आपके हृदय में क्या है ? उसमें एक पच्चीस साल की अमरिकन लडकी बसी है । आप उसे बहुत चाहते है फिर भी उसे छोडकर यहाँ चले आये है । वह लडकी अभी बिमार है और न्यूयोर्क के अस्पताल में है ।'

मेरी बात से वे अमरिकन सज्जन चौंक उठे । उन्होंने कहा, 'आपने यह सब कैसे जाना ?'

'कैसे जाना यह प्रश्न अलग है परन्तु मेरी बात सच है या नहीं ?'

'सच है ।'

'बस तब तो ।'

दूसरे दिन वे एक छोटा-सा आल्बम लेकर आये, जिसमें उस अमरिकन लडकी की तसवीरें थी । एक में उसने सुंदर तरीके से शीर्षासन किया था, दूसरी में हलासन, तीसरी में पद्मासन, चौथी में पश्चिमोत्तानासन किया था । अन्य सामान्य तसवीरें थी ।

मैंने कहा, 'इतनी सुंदर व संस्कारी लडकी है फिर भी उसे छोडकर यहाँ आ गये और अब संन्यास लेना चाहते हैं ? न्यूयोर्क जाइये और उसे अपना बनाइये । आपके दिल में जब तक उस लडकी के लिए लालसा या वासना भरी है, तब तक आप बाह्य संन्यास लेंगे फिर भी सफलता नहीं मिलेगी । आप अपने त्याग की शोभा नहीं बढा सकेंगे ।'

मेरी बात का उन पर असर पडा । वे बोले, 'मैं संन्यास लेना नहीं चाहता पर मुझे आपके आशीर्वाद चाहिए । वह लडकी शीघ्र स्वस्थ हो जाय ऐसा आशीर्वाद दीजिये ।'

'ईश्वर उसे अच्छी कर देगा । पहले भीतरी त्याग हासिल कीजिये । भीतरी त्याग का मतलब है कामनाओं एवं वासनाओं का त्याग । फिर तो बाहर का त्याग स्वतः आ जाएगा ।'

उनके मन का समाधान हो गया ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

९. पवित्रता की परख

'सत्य की सदा जय होती है' यह उपनिषद वचन आज भी इतना ही सच है परंतु इसके साथ यह भी उतना ही सच है कि सत्य की राह पर चलना हमेशा आसान नहीं होता । यह रास्ता अनेक भयस्थानों एवं मुसीबतों से भरा है, उस पर चलनेवाले की कसौटी होती है, उसे भिन्न भिन्न प्रलोभनों का सामना करना पडता है, नींदा एवं टीका सहन करनी पडती है ।

सत्य का पथ अत्यंत उपकारक एवं आशीर्वाद समान है पर संकट रूपी कंटको से भरा पडा है । यह मार्ग तलवार की धार जैसा है । दृढ मनोबलवाले वीर पुरुष उस पर धीरज, लगन व उत्साह से आगे बढकर अन्ततः सफल होते है । इस बारे में एक सत्य घटना मेरे मनश्चक्षु के सामने आती है । एक व्यक्ति की यह ऐसी जीवनकथा है जो हमारे हृदय में आदर उत्पन्न करती है । अतः इसको यहाँ पेश कर रहा हूँ ।

गुजरात के साबरकांठा जिले में मोडासा तालुके में बायल नामक एक छोटा-सा गाँव है । मोडासा या हिंमतनगर से मोटर-मार्ग से वहाँ जा सकते है ।

आजसे करीब चालिस साल पहले उस गाँव में एक विधवा रहती थी, जिसे सत्संग और सेवा में रुचि थी । गाँव में कोई साधु-महात्मा आते तो वह उनके दर्शन के लिए जाती, उपदेश सुनती और उसे भिक्षा भी देती, यथाशक्ति सेवा भी करती ।

उसके जीवन में सांसारिक सुख न था । पूर्वसंस्कार बडे प्रबल होने पर उसका मन संतसमागम में गहरे सुख की अनुभूति करता । संतपुरुष से ऐसा प्रेम किसी असाधारण आत्मा में ही होता है । इस दृष्टि से देखा जाय तो उस स्त्री की आत्मा असाधारण थी । उस समय उच्चे कोटि की साधनावाले संतपुरुष तीर्थयात्रा पर निकलते और बीच में आनेवाले गाँव में इच्छानुसार कम या अधिक समय रहते । इनमें कुछ संतपुरुष शक्तिसंपन्न भी होते थे ।

इत्तफाक से एक बार ऐसे ही परम प्रतापी संतपुरुष घूमते-धूमते इस गाँव में आ पहुँचे । गाँव के भाविक लोग उनके दर्शन से बडे प्रसन्न हुए । वह विधवा भी उसके पास पहूँच गई ।

उनके दर्शन व उपदेश से ऐसा लगा कि महापुरुष उच्च अवस्था प्राप्त है । ऐसे पुरुष का समागम जिस किसको और जब तब नहीं मिलता । अगर उनकी सेवा का लाभ मिले तो जीवन सफल हो जाये । वह स्त्री बडे मन से उनकी सेवा करने लगी । महात्मा पुरुष को भी उस गाँव का शांत वातावरण भा गया । इसलिए वे वहाँ लंबे समय रहे ।

'जहाँ गाँव वहाँ सडाव' इस न्याय से बायल गाँव में भी कुछ अशुभ-बुरे तत्व विद्यमान थे । उन्होंने उस विधवा की निंदा करना शुरु किया । महात्मा पुरुष एवं उस स्त्री का संबंध बुरा है ऐसा खुलमखुल्ला बोलने लगे ।

उस स्त्री को यह सुनकर बडा दुःख हुआ । वह जानती थी कि संतपुरुष कितने पवित्र थे और वह भी पवित्रता से उनकी सेवा करती थी । इसलिए लोगों की निंदा सुनकर उसे अत्यधिक दुःख हुआ लेकिन क्या करे ?

कुछ आदमियों ने उस स्त्री से कहा, 'कितने भी बडे महापुरुष हो, संगदोष तो उन्हें लगता ही है । जेमिनी, पराशर और विश्वामित्र जैसे पुरुष भी स्त्री की मोहिनी से नहीं बचे तो आजकल के सामान्य संतो

की क्या बिसात ? फिर भी अगर तुम्हें संगदोष न लगा हो, तुम पवित्र हो तो उबलते तेल की कडाही में हाथ डालो और पवित्रता की परख होने दो अन्यथा गाँव में फजीहत होगी ।

उस स्त्रीने लोगों को बहुत समझाया पर न माने तब वह पवित्रता की परख देने तैयार हो गई । वैसे तो वह अनपढ थी पर ईश्वर की कृपा एवं सत्य की विजय में उसे बडी श्रद्धा थी । एक निश्चित दिन गाँव वाले इकट्ठे हुए । उबलते तेल की कडाही के पास वह स्त्री आई ।

उसने परमात्मा से प्रार्थना की 'हे प्रभु ! मेरा व संतपुरुष का सम्बन्ध कितना पवित्र है, यह आप ही जानते है । आप सर्वज्ञ है, अंतर्यामी है, आज मेरी रक्षा करना । तुम्हारे बिन मेरा कौन सहारा ?'

ऐसा बोलकर उसने उबलती तेल की कडाही में हाथ डाल दिया । गाँव के लोग यह दृश्य उत्सुकता, आश्चर्य एवं कुतूहल से देखते रहे ।

उबलते तेल का उस नारी पर कोई असर न हुआ । जाने किसी ठंडे पानी में हाथ डाले हो ऐसा लगा । सबकुछ जानने वाले परम कृपालु परमात्मा ने उसकी रक्षा की । उनके लिए कोई काम मुश्किल नहीं है । शरणागत भक्त के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं ।

जिसे शंका की नजरों से देखते थे, जिसकी निंदा करते थे, वह नारी विशुद्ध-पवित्र साबित हुई । लोगों के दिल में उसके प्रति सम्मान की भावना जागी । उन्होंने उसकी जयजयकार की । संकीर्ण मनोवृत्तिवाले, निंदा करनेवाले खामोश हो गये ।

गाँव के अग्रगण्य लोगों ने सबकी ओर से उस पवित्र नारी की क्षमा माँगी । उसके मना करने पर भी उस नारी को सो बीघा जमीन दी । थोडे समय के बाद वे संतपुरुष गाँव से चले गये और समयांतर में उस नारी ने भी देहत्याग किया । गाँव लोगों ने उसकी पवित्र स्मृति में छोटा-सा मंदिर बनाया । बायल गाँव में आज भी उस मंदिर का दर्शन हो सकता है । उस स्त्री को समर्पित जमीन का उपभोग उसके वंशज आज भी कर रहे हैं ।

यह जीवनकहानी किसी एकांतवासी विरक्त महापुरुष की नहीं परंतु समाज के बीच रहकर साँस लेनेवाले एक सामान्य नारी की है और इसीलिए वह अत्यधिक प्रेरक बन गई है । इसमें से यदि हम सत्य से जुडे रहने का तथा उसके लिए अंत तक आवश्यक बलिदान देने का पदार्थपाठ सीखें तो भी पर्याप्त है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१०. सेवाव्रती संत

गंगातट पर स्थित उत्तराखंड के सुंदर सुप्रसिद्ध तीर्थस्थान हृषिकेश की यात्रा करनेवाले यात्री जब काली कमलीवाले की संस्था की मुलाकात लेते हैं तो उन्हें संस्था के प्रमुख भवन में काली कमलीवाला – स्वामी श्री विशुद्धानंदजी की प्रतिमा का दर्शन होता है । बाबा काली कमलीवाला एक सच्चे लोकसेवक थे जिन्होंने अपना समुचा जीवन जनसेवा में बिताया था । दीनदुःखी, अनाथ, अपंग और साधुसंतो में वे ईश्वर का दर्शन करते, उन्हें ईश्वर की प्रत्यक्ष मूर्ति मानते । उन्हें सहायता व संतुष्टि देने में कोई कसर नहीं रखते ।

उस जमाने में ऋषिकेश की धरती जंगल की भूमि थी । इसमें हिंसक पशु भी रहते थे और कभी तो दिन को भी उनका सामना करना पडता था ।

सच्चे संत-महात्मा को कोई डर नहीं होता अतः वे एकांत घने जंगलो में रहते, तपश्चर्या करते । कुछ सिद्धपुरुष भी वहाँ रहते थे तो कतिपय उच्च अवस्था पर पहूँचने की अभिलाषावाले साधक भी थे । वे प्रायः फल-फूल, कंदमूल खाकर रहते तो कुछ लोग पर्वतीय बस्ती से भिक्षा ले आते ।

ऐसी परिस्थिति में बाबा ने वहाँ कदम रखा । उनका मन तो पहले से ही संतपुरुषों के प्यार से परिप्लावित था । उन्होंने आसपास की जनता से आटा और अन्य सामग्रीयाँ लेना प्रारंभ किया । उनसे वे रसोई बनाते और अरण्य में आये आश्रमों में भिक्षा पहुँचाते ।

स्नेह, सेवा व समर्पणभाव से शुरु की गई वह प्रवृति नियमित रूप से जारी रही । ऋषिकेश आनेवाले भावुक, धर्मप्रेमी लोगों पर उसका गहरा प्रभाव पडा । इससे इस प्रवृति को जनता का सहकार प्राप्त हुआ ।

आगे चलकर धनसंपत्ति बढने पर नया मकान बनाया गया और साधुसंतो के साथ साथ गरीबों, अनाथों, पंगुओं, दीन-दुःखीयों, छात्रों, विधवाओं आदि की सेवाशुश्रुषा बडे पैमाने पर होने लगी । इस प्रवृति के पीछे अत्यंत प्राणवान, पवित्र और प्रबल संकल्प-बीज था, कोई स्वार्थ, लालसा या कामना न थी । इसमें से जो अंकुर निकला वह आगे चलकर एक विशाल वृक्ष में परिणत हुआ । सेवा का वह विशाल वटवृक्ष अनेकों के तनमन व अंतर के लिए प्रेरक व आशीर्वाद समान साबित हुआ ।

काली कमलीवाले का उद्देश्य अपने जीवन को चंदन की तरह परार्थ घिसकर दूसरों को सुवास पहूँचाना था । स्वयं संकट या मुसीबतों का मुकाबला कर दूसरे को सुखी बनाना था । इसकी पूर्ति के लिए उन्होंने जीवनभर परिश्रम किया । उन्होंने जो संस्था प्रतिस्थापित की, वही बाबा काली कमलीवाले की संस्था । भारत में ही नहीं, भारत के बाहर भी वह अजोड है, अनुपम है ।

इसमें भिक्षा के उपरांत दूसरी अनेक प्रवृतियाँ चलती है । इसमें औषधालय, पुस्तकालय, गौशाला, पानीघर, सत्संग-भवन, संस्कृत विद्यालय, आत्मविज्ञान भवन आदि के द्वारा विविध प्रवृतियाँ चलती है । करीब १५० संतपुरुषों, १२५ कुष्ठ रोगीयों को पंद्रह-पंद्रह दिन की खाद्य सामग्री देने का प्रबंध किया गया है । आटा-दाल आदि का लाभ लेनेवाले स्त्रीपुरुषों की संख्या २५० से ६०० तक होती है । प्रतिदिन ८०० से १००० साधु तैयार रसोई ग्रहण करते है । यात्रा के दिनों में तो यह तादाद स्वाभाविक ही बढ जाती है ।

लक्ष्मण झूले की जगह पहले रस्से का कच्चा पुल था । उसके नीचे गंगा का प्रवाह बडा ही प्रबल और वेगवान था । अतः यात्रिओं को बडी परेशानी होती । बाबा कालीकमलीवाले तो दूसरों की कठिनाइयों

को दूर करने में ही आनंद का अनुभव करनेवाले थे । उन्होंने इसका इलाज करने का संकल्प किया । परम कृपालु परमात्मा ने इसका निमित्त बनाने एक शेठ को भेजा, जिसका नाम था श्री सूरजमल झुनझुनवाला । उन्होंने बाबा को धन प्रदान करने की इच्छा व्यक्त की । इस पर बाबा ने उत्तर दिया, 'धन लेकर मैं क्या करूँगा ? मैं तो संन्यासी हूँ, इसलिए संग्रह नहीं कर सकता । हाँ, यदि आप धन का सदुपयोग ही करना चाहते है तो इस पुल को पक्का बना दिजीये । इससे लोगों का भला होगा । लोकसेवा के इस उत्तम यज्ञ में आप आहूति दें ।'

बाबा के आदेशानुसार उस शेठजी ने एक सुंदर पक्का पुल बनवा दिया, जिसे आज भी आप देख सकते है । इस पूल से गुजरनेवाले यात्रियों को पता भी न होगा कि यह तो काली कमलीवाले की सेवाभावना का साक्षात् प्राणवान प्रतीक है ।

सेवाक्षेत्र में उन महापुरुष की एक और देन भी है । उस समय बदरीनाथ की यात्रा बडी कठिन मानी जाती थी । धर्मप्राण नर-नारी अनेक कठिनाईयाँ पार करते हुए यात्रा पूरी करते थे । मोटर भी नहीं थी और मार्ग में कोई धर्मशाला भी न थी ।

बाबा ने इ.स. १८८० में बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री तथा जमनोत्री की यात्रा करके उस मार्ग की कठिनाईयों का अनुभव किया । इससे उनका परार्थी दिल दुभा । मार्ग की मुसीबतों को कम करने का संकल्प किया, जिस पूर्ण करने उन्होंने सहरानपुर, मेरठ, दिल्ली और कलकत्ता जैसे शहरों का दौरा किया और जनमत तैयार किया । वहाँ के सेवाभावी श्रीमंत-धनिकों का संसर्ग किया । फलतः उनकी भावना पूर्ण हुई । बदरी, केदार, गंगोत्री, जमनोत्री के रास्ते में लगभग ९० धर्मशालाएँ, पानीघर, औषधालय, पुस्तकालय, सदाव्रत, अन्नक्षेत्रों आदि का निर्माण किया और उसके कुशल संचालन का प्रंबध भी किया ।

उत्तराखंड के उन चारों धामों की यात्रा करते वक्त बाबा काली कमलीवाले की याद हमें सहज ही आ जाती है और हमारे दिल में उनके प्रति सम्मान की भावना पैदा होती है । उत्तराखंड के अतिरिक्त हरिद्वार, ऋषिकेश, रामनगर, कनखल, कलकत्ता, कुरुक्षेत्र एवं प्रयागराज जैसे स्थलो में भी उनकी सेवा संस्थाएँ फैलने लगी ।

बाबा का जन्म पंजाब के गुजरानवाला जिले के जलालपुर नामक गाँव में सन १८३१ में एक वैश्य परिवार में हुआ था । उनका मूल नाम बिसावासिंह था । बचपन से ही उनमें वैराग्य के अंकुर पनपने लगे थे । गृहस्थाश्रम में प्रवेशित होने पर भी यह प्रवृति बनी रही । बत्तीस साल की उम्र में उन्होंने अपनी पत्नी, पुत्र एवं अन्य परिवारजनों को साफ-साफ कह दिया, 'मेरे जीवन का शेष समय मैं लोकसेवा में बिताना चाहता हूँ ।' उनका दृढ संकल्प आखिरकार साकार हुआ । तपोनिधि महाराज से दीक्षा ली और उनका नाम विशुद्धानंद पडा । किन्तु वे प्रायः काली कमली पहनते अतएव काली कमलीवाले के नाम से पहचाने जाने लगे । मीरां की भाँति उन्हें भी लगा होगा कि 'ओढुं हुं कालो कामळो, दूजो दाग न लागे कोय' अर्थात् पहनूं मैं काली कामली, दूजा दाग न लागे कोई ।

कृष्णप्रेम में आकंठ निमग्न मीरां को कोई दाग न लगा, इसी तरह लोकसेवा की लगनवाले विशुद्धानंद को कोई दाग न लगा । सेवा करनेवाला अक्सर सेवा में फँस जाता है पर विशुद्धानंद पद, प्रतिष्ठा या पैसे के मेवे में न पडे । आजीवन सेवा में ही मेवे की मीठाश महसूस करते रहे । जिस सेवाधर्म को अत्यंत गहन, सूक्ष्म, जटिल और योगीयों को भी अगम्य कहा गया है उस पर उन्होंने सफलता से कदम बढाये । जिनका हृदय दूसरों को सुखी बनाने के लिए संवेदनशीलता का अनुभव करता

है, जो सदैव समर्पणभाव रखते है उसकी सेवा चाहे किसी भी क्षेत्र में हो, समाज के लिए आशीर्वाद समान होती है । ऐसे महापुरुष समाज की अनमोल पूंजी है । ऐसे समाजनिर्माता ही समाज की सुरत को बदल सकते हैं ।

जीवन के अंतिम क्षणों तक अविरत सेवा करनेवाले काली कमलीवाला अपने को सेवक, सेवाव्रतधारी या कर्मयोगी कहलाने में गौरव का तनिक भी अनुभव न करते । कोई उनसे कहता कि आपने महत्वपूर्ण सेवा की है तो वे उत्तर देते, 'आप क्या होश खोकर मुझे मान की मदिरा पीला रहे है ? कौन सेवा करता है ? मैं तो निमित्त हूँ, ईश्वर के हाथ का हथियार हूँ । वह करवाता है वही करता हूँ इससे ज्यादा कुछ नहीं ।'

आज वे विरक्त सदेह जीवित नहीं है लेकिन उनके द्वारा संस्थापित सेवासंस्थाओं और कार्यों द्वारा अमर हैं । उनके यशःशरीर को जरा या मृत्यु का भय नहीं है । आज तो साधन-सुविधा काफि हो गई है, मगर उस जमाने में इतनी सुविधाएँ न थी, प्रतिकुल परिस्थिति थी । उन्होंने उस विकट परिस्थिति में सेवा का कार्य किया उसका ब्योरे-वार प्रामाणिक इतिहास तो उनके पास ही रह गया । हमारे पास तो केवल उसकी झलक ही है ।

फिर भी, शून्य में से विराट सेवासंस्था का सर्जन करनेवाले उन संतपुरुष के लिए हमें आदर अवश्य होता है । उनका जीवन उस दोहे के समान था –

'जननी जनै तो भक्तजन, या दाता या शूर,
या तो रहना पुत्रहीन, मत गवाँना नूर !'

११. योगविद्या का अदभूत प्रसंग

उत्तरप्रदेश में गोरखपुर के गोरखनाथ मंदिर में बाबा गोरखनाथ की मनमोहन प्रतिमा है । इसका दर्शन करते हुए मछंदरनाथ, गोरखनाथ, चर्पटनाथ, गहिनीनाथ जैसे महापुरुषों के जीवन के प्रेरणास्पद प्रसंगो का इतिहास नजरों के सामने खडा हो जाता है । नाथ संप्रदाय का विचार करते वक्त योगसाधना का निम्न लिखित सूत्र बरबस याद आ जाता है :

'योगाग्नि से प्रदीप्त देहधारी योगी को मृत्यु का भय नहीं रहता, वृद्धावस्था उसे नहीं सताती, रोग नहीं होता । ऐसा योगी मृत्युंजय एवं अखंड यौवनवाला हो जाता है ।'

नाथ संप्रदाय के योगी इन्द्रिय व मन पर काबू पाकर परमात्मा का साक्षात्कार करके परमशांति या मुक्ति प्राप्त करने में तो मानते ही थे, साथ ही वे अपनी सूक्ष्म व स्थूल प्रकृति को परिवर्तित कर उसे दिव्यातिदिव्य बनाने में भी रुचि रखते थे । ऐसे द्विविध रस के परिणाम स्वरूप होनेवाली निश्चित साधना से मछंदर व गोरखनाथ जैसे महायोगी आत्मविकास के उच्चतम शिखर पर आसीन होकर नर से नारायण बन गये थे । इस साधना में आसन, प्राणायम, षट् क्रिया एवं खेचरी मुद्रा समान अन्य मुद्राओं को विशेष महत्व दिया जाता था ।

नाथ संप्रदाय में आज पहले जैसे समर्थ पुरुष शायद ही देखने को मिलते हैं किन्तु इस संप्रदाय के सच्चे प्रतिनिधि जैसे एक आदर्श पुरुष गत सदी में हो गये । वे थे गोरखपुर के गोरखनाथ मंदिर के महंत गंभीरनाथजी । एकांत व शांत स्थानों में रहकर गुरुगम्य अनेकों साधनाओं का आश्रय लेकर वे सिद्धपुरुष बने । जीवन के उत्तरार्ध में वे योगीपुरुष गोरखनाथ मंदिर में रहते । अनेक भक्त, जिज्ञासु और दर्शनार्थी उनके सत्संग का लाभ लेते । इनके जीवन की एक सुंदर घटना यहाँ प्रस्तुत करना अनुचित नहीं होगा ।

गोरखपुर के ही एक श्रीमंत भक्त ने एक दिन बाबा गंभीरनाथजी को वंदन करते हुए कहा, 'बाबा, मेरे युवान पुत्र की बिमारी की चिंता से मेरा मन अस्वस्थ है । इंग्लेंड में रहनेवाले उस पुत्र की बिमारी का खत बहुत दिन पहले मिला था । तब वह बहुत बिमार था । अभी उसका कोई समाचार नहीं है । योगीपुरुष अपनी दुरदर्शन व दूरश्रवण की शक्ति से सब बात जान सकते हैं ऐसा हमारा विश्वास है । आप कृपया मेरे पुत्र संबंधी कुछ जानकारी दें ताकि मुझे शांति मिले ।'

योगी गंभीरनाथजी सिद्धि से प्राप्त चमत्कारों के जाहिर प्रदर्शन में नहीं मानते थे फिर भी भक्त की चिंता और दुःख देखकर वे पिघल गये । भक्त को थोडी देर बैठने के लिए कहकर अपने साधना-खंड में जाकर पद्मासन लगाकर बैठ गये । थोडी देर बाद बाहर आकर उससे कहा, 'आपके पुत्र की बिमारी दूर हो गई है और वह स्टीमर से भारत लौट रहा है । कुछ ही दिनों में आपको वह मिलेगा ।'

योगी की शब्दों से उस भक्त का मन शांत हुआ, उसे संतोष की अनुभूति हुई । एकाध सप्ताह में उसका पुत्र घर आ गया । उसे भला-चंगा देखकर उस धनिक भक्त को बाबा गंभीरनाथजी की अदभूत शक्ति का परिचय मिला और उनके प्रति आदर की भावना पैदा हुई ।

दूसरे ही दिन, बाबा के दर्शन को जाते वक्त पुत्र को साथ आने के लिए कहा मगर वह आने को तैयार न था । फिर भी पिता के अति आग्रह के कारण साथ चलने को तैयार हुआ । गोरखनाथ के मंदिर में गंभीरनाथ को देखकर वह दंग रह गया । उसने सस्नेह वंदन करते हुए पिताजी से कहा, 'इन महात्मा को मैंने देखा है ।'

यह सुन पिता अचरज में पड गये, बोले 'तुमने उन्हें देखा कैसे ? तुम तो पहली दफा यहाँ आ रहे हो !'

'सप्ताह पूर्व जब मैं स्टीमर से भारत आ रहा था तब एक दिन शाम को हम मिले थे । उनका स्वरूप ऐसा ही शांत व तेजस्वी था । मेरे साथ बातचीत करके वे कहाँ गये यह पता न चला ।'

पुत्र की बात से उस भक्त को सप्ताह पूर्व की घटना याद आ गयी । उसे अब पक्का विश्वास हो गया कि स्वामीजी ने उस दिन उस कमरे में दाखिल होकर इस लडके की मुलाकात अवश्य ली होगी ।

'आश्चर्य की कोई बात नहीं,' योगीजी ने खुलासा पेश किया 'आपके बेटे ने सच कहा है । मैं उसे स्टीमर पे मिला था और उसकी बिमारी का हाल भी पूछा था ।' बाप-बेटे की जिज्ञासा तृप्त करने के लिए गंभीरानंदजी ने अधिक स्पष्टता करते हुए कहा, 'योग की कुछेक क्रियाएँ-साधनाएँ ऐसी होती हैं जिनके साधक अपने स्थूल व सुक्ष्म शरीर पर संपूर्ण काबू पा सकता है और सूक्ष्म देह या स्थूल शरीर द्वारा दूर-सुदूर के प्रदेश में जा सकता है । वहाँ की वस्तु या व्यक्ति के बारे में जानकारी हासिल कर सकता है ।'

अपनी ईच्छानुसार गति करने की वह विद्या नाथ संप्रदाय के योगियों के पास थी । उस विद्या का उपयोग करके वे हैरत में डालनेवाले कार्य कर दिखाते । आजकी स्थिति करुण होने पर भी भारत अभी ऐसे समर्थ संतो से रहित नहीं है । अब भी ऐसे समर्थ कुछ जगहों में बसते है ।

बाबा गंभीरानंदजी की मुलाकात के बाद वह धनिक भक्त का पुत्र भी उनका शिष्य हो गया । वे महापुरुष चमत्कार, विशेष शक्ति या सिद्धि को जीवन-ध्येय नहीं मानते थे । चमत्कार के सामुहिक प्रदर्शन में उन्हें दिलचस्पी न थी । चमत्कार के चक्कर में पड जीवन के मुलभूत हेतु को भूल न जाने का उपदेश भी वे देते थे परंतु श्रद्धाभक्ति संपन्न शिष्यों और भक्तों को सहायक बनने के पुनित प्रसंग उनके जीवन में सहज रूप से उपस्थित हुए थे । केवल गोरखपुर की ही नहीं किन्तु भारत की भूमि को पावन करनेवाले ऐसे महायोगी को मेरे सदैव वंदन हो !

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१२. प्रौढ़ा

संस्कृति के उषःकाल से ही मनुष्य को यह समस्या सताती होगी कि मृत्यु के बाद जीवन का अस्तित्व होता है ? लेकिन अब तो इस समस्या का हल हो गया है । चिंतन व मननशील मनीषियों ने यह ढूँढ निकाला है कि मृत्यु के बाद भी जीवन रहता है । गीता के उस प्रसिद्ध श्लोक में कहा गया है - 'जिस तरह मनुष्य पुराने वस्त्रों का त्याग कर नवीन वस्त्र धारण करते हैं उसी तरह जीवात्मा जीर्ण शरीर का त्याग कर नये शरीर में प्रवेश करती है ।'

मृत्यु पश्चात जीवन में विश्वास करने के लिए तीन कारण हैं १) कर्म का नियम २) जीवन ध्येय और ३) प्रत्यक्ष प्रमाण या अनुभव ।

जगत के प्रायः सभी सुसंस्कृत धर्म कर्म के नियम में मानते है । शुभ कर्मों का शुभ और अशुभ कर्मों का अशुभ फल अवश्य मिलता है । कर्म का फल भुगतना ही पडता है । यह नियम प्रायः सर्वसंमत जैसा है और उसमें हिन्दू धर्म, जरथुस्त धर्म, ईसाई, इस्लाम व बौद्ध धर्म भी मानता है । इस नियम में आस्था रखनेवाला जानता ही है कि शुभाशुभ सभी कर्मों का फल एक ही जन्म या एक ही जीवन में नहीं मिलता । तो फिर जो कर्मफल शेष रहता है उसको भुगतने से पूर्व यदि वर्तमान शरीर छूट जाय या समाप्त हो जाय तो उसका अर्थ यह नहीं हो सकता कि जीवन का अंत हुआ । उन कर्मफलों के उपभोग के लिए दूसरा शरीर या जीवन धारण करना अनिवार्य है और उसे तब तक धारण करना पडता है जब तक कि उन शुभाशुभ कर्मफलों के उपभोग की समाप्ति न हो जाये ।

उसी तरह कर्म-नियम में माननेवालों को जन्मांतर में पुनर्जन्म में अथवा जीवन की परंपरा या पुनरावृत्ति में अवश्य मानना पडता है । पुनर्जन्म में विश्वास पैदा करनेवाला दूसरा महत्वपूर्ण कारण जीवन-ध्येय है । क्या यह जीवन बिलकुल निरर्थक या ध्येयरहित हो सकता है ? नहीं ।

न्यूटन ने देखा कि वृक्ष पर से जो फल गिरता है वह उपर की दिशा में नहीं पर नीचे की दिशा में गतिशील होता है । इससे न्यूटन ने गुरूत्वाकर्षण का सिद्धांत खोज निकाला ।

फल पृथ्वी पर गिरता है और उसीसे आकर्षित होता है क्योंकि उसकी मूल जननी पृथ्वी है । वह पृथ्वी से पैदा हुआ है । इसी तरह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांतनुसार जीव सदैव अपने मुलभूत शिवतत्व में प्रतिष्ठित होने या मिल जाने की तमन्ना रखता है और इसी हेतु प्रवृत्ति एवं प्रगति करता है ।

जीवन द्वारा सच्चिदानंद स्वरूप के स्वानुभव की एवं उसमें प्रतिष्ठित होने या मिल जाने की प्रवृत्ति चालू ही रहती है और जब तक उसकी पूर्णाहूति न हो वहाँ तक जीवन की भी समाप्ति नहीं होती । इस तरह सोचने से जीवन की पुनरावृत्ति का विश्वास सहज ही होता है ।

तीसरी बात प्रत्यक्ष प्रमाण की है । भारत में प्राचीन और अर्वाचीन काल में ऐसे समर्थ नर-नारी हुए हैं जिन्होंने साधनामय जीवन बिताकर अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान प्राप्त किया है और दूसरों के पूर्वजन्मों पर भी प्रकाश डाला है । उदाहरणार्थ नारदजी, जडभरत, भगवान बुद्ध, भगवान कृष्ण और महावीर स्वामी । आधुनिक काल में भी भारत या भारत के बाहर अपने पूर्वजन्म की स्मृतिवाले कुछ पुरुष पैदा होते है ।

उनके कथनानुसार उनके पूर्वजन्म की घटनाओं की परख या समीक्षा की जाती है और वे सच्ची साबित होती है । ये पुरुष आत्मिक विकास की दृष्टि से बिलकुल मामूली जान पडते है फिर भी पूर्वजन्म

के ज्ञान से संपन्न होते है । उनके संसर्ग में आनेवाले दंग रह जाते है । उनकी पूर्वजन्म की स्मृति सच्ची होती है यह बात सिद्ध हो चुकी है ।

ईसाई व इस्लाम धर्म 'डे ओफ जजमेन्ट' और 'कयामत का दिन' में विश्वास रखता है । तदनुसार मौत के बाद कब्र में सोये हुए जीवों को ईश्वर एक निर्धारित दिन को जगाता है और उनके कर्मो का हिसाब सुनाता है ।

परंतु प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या ईश्वर सब हिसाब सुनाकर बैठा ही रहता है या इससे आगे बढकर सब जीवों को कर्मों का शुभाशुभ फल भुगतने बाध्य करता है ? अगर खुदा इस तरह बाध्य करता हो (करता ही है) तो कर्मफल के उपभोग के लिये शरीर आवश्यक ही है ।

ईश्वर कब्र में सोये हुओं को उनके कर्मों का हिसाब सुनाने के लिए जगाता है इस मान्यता में पूर्वजन्म का सिध्धांत समाविष्ट है किन्तु हिन्दु धर्म ने उस सिद्धांत को अधिक वास्तविक व विशद रूप दिया है । इस दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दू धर्म के आगे वे धर्म बडे साधारण और पीछड़े हुए जान पडते हैं । हिन्दू धर्म ने अपने सुंदर सदग्रंथो के द्वारा पूर्वजन्म-पुनर्जन्म के सिद्धांतो का अत्यंत मनोहारी सुंदर एवं तर्कबद्ध रूप से प्रतिपादन किया है । इस संबंध में इतना निर्देश काफी है ।

फिर भी ऐसा कोई निश्चित नियम मुकर्रर नहीं किया जा सकता कि मरने के बाद हर हालात में तुरंत ही दूसरे स्थूल शरीर की प्राप्ति हो जाये । हाँ, मृत्यु के बाद जीवात्मा कभी कभी फौरन दूसरे शरीर में प्रवेशित होती है तो कभी अधूरी या अतृप्त उम्मीदों या वासनाओं के उपभोग के लिए आवश्यक सूक्ष्म शरीर धारण करके उसमें साँस लेती है । उसे लिंग शरीर भी कहा जाता है । इस प्रकार की व्यवस्था करने की शक्ति या स्वतंत्रता उसमें नहीं होती । यह व्यवस्था तो परमात्मा की जन्म-मरण का प्रबंध करनेवाली परम शक्ति ही करती है । सूक्ष्म शरीर में खंड समय के लिए साँस लेनेवाले जीव भले व बूरे अथवा तो साधारण व असाधारण दोनों प्रकार के होते है । कभी उनका आश्चर्यान्वित अनुभव या परिचय भी हो जाता है । ऐसे ही एक सूक्ष्म शरीरधारी साधारण जीवात्मा का परिचय मुझे हुआ था । यह प्रसंग का उल्लेख करना चाहूँगा जिससे बात अधिक स्पष्ट हो जायेगी ।

यह घटना आज से सात साल पहले की है । एक बार जाडे के मौसम में मैं वालकेश्वर स्थित सेनेटोरियम में रहने गया । वह स्थान बडा ही शांत, स्वच्छ व सुंदर था अतः मुझे पसंद आ गया । उसी रात मैं जब अपने कमरे में खाट पे बैठ के प्रार्थना कर रहा था कि एक औरत की अनजानी आकृति मेरे सामने आ खडी हुई ।

खिड़की से बाहर के रास्ते पर की बत्ती का साधारण प्रकाश आ रहा था, इससे कमरे में थोडा-सा उजाला था । उसे उजाले में मैं उसको देख सका । उस स्त्री की उम्र करीब ३०-३५ साल की होगी । उसकी मुखाकृति शांत, आकर्षक और गोरी थी । उसने गुलाबी रंग की सुंदर साडी पहनी थी । वह एकटक मुझे देख रही थी । मुझे हुआ, यह अजीब सी व्यक्ति कौन है ?

आज से पहले मैंने ऐसी कई आकृतियाँ देखी थी इसलिए अचरज न हुआ परंतु उसकी अप्रत्याशित उपस्थिति से एक अजीब-सी, असाधारण भावना उत्पन्न हुई ।

वह औरत अपना हाथ ऊँचा करके मेरे खाट की ओर इंगित करते हुए मृदु व मीठे स्वर में कहने लगी, 'आप जिस खाट पर बैठे है वह मेरी खाट है । आज से दो साल पहले इसी खाट पर प्रसुति में मेरी मृत्यु हुई थी !'

'अच्छा ?' मैंने उत्तर दिया ।

'हाँ, आपको नहीं मालूम मगर मुझे यह खाट बहुत प्यारी थी और यह कमरा भी । इस सामनेवाले आईने में मैं अपना मुख देखा करती । मेरी मौत बडी दुर्भाग्यपूर्ण रीते से हुई थी । तब से मैं यहाँ ही रहती हूँ और घूमती हूँ ।'

उस औरत की बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ । मैंने पूछा, 'तुम यहाँ रहकर क्या करती हो ?'

'यहाँ जो भी रहने आता है उसे बीमार कर देती हूँ ।' फिर धीरे-से बोली, 'अच्छे बूरे की चर्चा में नहीं पडूँगी पर इससे मुझे एक प्रकार का गहरा संतोष मिलता है ।'

'संतोष ? किसीको बीमार करने में संतोष ? यह तो बडी विचित्र बात है ।'

'फिर भी यह हकीकत है । एक बात कहना चाहूँगी कि विश्वास रखिये, मैं दूसरों को बीमार करूँगी मगर आपको नहीं ।'

उस औरत के शब्दों में एक प्रकार की घनीभूत करुणता थी । वह अभी मेरे पास ही खडी थी । मेरे लिए यह अनुभव अत्यंत विलक्षण था । मैंने कुतूहलवश एक प्रश्न पूछा, 'ऐसा जीवन क्या आपको पसंद है ?'

'प्रारंभ में पसंद नहीं था परंतु ज्यों ज्यों वक्त बीतता गया त्यों त्यों ऐसे जीवन से मैं अभ्यस्त हो गई और अब तो मुझे यही पसंद है ।'

'इस योनि में आने के बाद तुमको कोई विशेष शक्ति हासिल हुई है क्या ?'

'ऐसी कोई उल्लेखनीय शक्ति तो नहीं मिली फिर भी हमारे शरीर में पृथ्वी तत्व न होने से हम हमारी शक्ति की सीमा में रहकर अभिष्ट गति कर सकते है । दूर की वस्तुओं को एवं घटनाओं को देख सकते हैं और दूसरे अदभूत कार्य कर सकते हैं । इस योनि में पूर्ण शांति भले ही नहीं है पर थोडा बहुत आनंद अवश्य है ।'

उसने फिर कहा, 'आप इस सेनेटोरियम में आनेवाले थे यह खबर मुझे थी । आप आए यह भी मालूम था इसलिए तो यह अमूल्य अवसर जानकर आपके दर्शन को आ पहूँची और अब मैं आपसे बिदा लेती हूँ ।' यह कहकर वह औरत आसपास के वातावरण में घुलमिल कर अदृश्य हो गई । इसके बाद वह फिर कभी दिखाई न दी ।

बाद में जाँच करने पर पता चला कि दो साल पहले इसी कमरे में इसी खाट पर उस स्त्री की मृत्यु प्रसुति की पीडा से हुई थी । दूसरी आश्चर्यजनक बात यह थी कि मेरे साथे सेनेटोरियम के उस ब्लोक में रहनेवाले सभी स्त्रीपुरुष बारी-बारी से बीमार हुए थे ।

मृत्यु के पश्चात दूसरे जीवन के ऐसे अनुभव बहुतों को होता है । कुछेक को उन अनुभवों से आनंद होता है तो कतिपय ऐसे सुक्ष्म देहधारी सामान्य जीवों के साथ संबंध बांधने में गौरव का अनुभव करते हैं । ऐसे मनुष्यों को एक बात याद रखने योग्य है कि यदि ऐसी शक्ति हो तो उसका उपयोग ऐसे मलिन, हल्के, साधारण जीवों से संबंध जोडने में करने के बजाय उत्तम कोटि के दिव्य आत्माओं, संतो

एवं परमात्मा के साथ संबंध जोडने के हेतु किया जाय तो वही उनके लिए सब भाँति हितकर सिद्ध होगा । जिन्दगी का सच्चा कल्याण इसीमें निहित है । यह कथन गलत नहीं है कि मनुष्य जैसा संकल्प करता है, जैसी योजनाएँ बनाता है, जैसा पुरुषार्थ करता है, वैसा ही बनता है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१३. चौपाटी पर अदभूत प्रयोग

बैरागी साधुओं की परंपरा भारत में बडे प्राचीन काल से चली आ रही है । एक समय ऐसा भी था जब ऐसे साधु सांसारिक विषयों या वासनाओं से उदासीन होकर किसी सदगुरू से दिक्षा प्राप्त कर बरसों तक तीव्र तपश्चर्या करके सिद्धि व आत्मशांति प्राप्त करते और बिना हिचकिचाहट और शोर के धर्माचरण से प्रेरणा प्रदान कर समाज का कल्याण करते थे ।

उस जमाने में गुरु परंपराओं का बडा महत्व था । गुरु का स्वीकार किये बिना आत्मसाक्षात्कार की साधना में आगे बढना और उत्तरोत्तर तरक्की करते हुए सफलता प्राप्त करना असंभवित था, ऐसी केवल मान्यता ही नहीं थी, श्रद्धा भी थी । संत कबीर ने भी गाया है 'गुरु बिन कौन बतावे बाट !'

कबीर की यह पंक्ति उनके जीवन पर भी लागु होती है । गुरुकृपा से साधक-शिष्य अपनी साधना में सफल हो सकते थे । ऐसे सिद्ध गुरु के साथ साधुमंडली प्रायः तीर्थयात्रा पर निकलती तब आम जनता को उनके दर्शन का लाभ मिलता था । उनके उपदेश व आशीर्वाद भी मिलते । वे किसी मंदिर में, धर्मशाला में या खुले मेदान में डेरा डालते ।

ऐसी मंडली में कभी सिद्ध पुरुष भी आते तो कभी तपस्वी महापुरुष भी । इनमें सर्वाधिक महत्व उनके गुरू का रहता । गुरु सचमुच तपस्वी, संयमी, ज्ञानी, भक्तिशाली एवं समर्थ होते थे । उनके समागम में रहना परम भाग्य की बात मानी जाती । वे गुरु अपने सदगुरुओं की प्राचीन परंपराओं को सप्राण रखते थे ।

ऐसे ही एक शक्तिसंपन्न सदगुरु की स्मृति आज एकाएक आ जाती है । केवल कौपीनधारी, पतली, गौर और दीप्त मुखमुद्रावाली आकृति मेरी नजरों के सामने खडी हो जाती है । उनकी शांत व तेजस्वी आँखे तथा उनके सस्मित होठ मेरे मनःचक्षु के समक्ष आ जाते है और एक घटना बरबस याद आ जाती है ।

यह घटना सन १९३६-३७ की है । उस वक्त बम्बई की चौपाटी पर एक बैरागी साधुओं की मंडली ने डेरा डाला था । बंबई की धर्मप्रेमी, पचरंगी प्रजा उनके दर्शन को आने लगी । उस वक्त मेरी उम्र छोटी थी फिर भी मुझे सत्संग में रुचि होने से मैं वहाँ जाता था । उस मंडली में जो गुरु थे वे कम उम्र के होने पर भी बडे ही तेजस्वी व प्रतापी थे ।

साधुओं को एक बार पानी की जरूरत थी । कुछ साधु चौपाटी समीप के मकान में पानी लेने गये । मकान में रहनेवालों ने पानी तो न दिया, उपर से गालियाँ दी और साधुओं को अपमानित करके निकाल दिया । निराश होकर साधु वापस लौटे और गुरु से हकीकत कही ।

गुरु ने शांत भाव से कहा, 'आज से पानी लेने कहीं मत जाना । इस बालू में कहीं भी गहरा खड्डा खोदो, इसमें से पानी निकलेगा ।'

'लेकिन वह पानी तो खारा होगा न ? ऐसा खारा पानी तो सागर में भी है । वह पीने या रसोई करने के काम में थोडी ही आएगा ?'

यह सुनकर गुरु हँस दिये और उन्होंने संपूर्ण स्वस्थता से उत्तर दिया, 'मेरे वचन पर विश्वास रखो और मेरे आदेश का पालन करो । वह पानी मीठा ही होगा और पीने तथा रसोई में काम आएगा । इश्वर में श्रद्धा रखके काम शुरू करो ।'

साधुओं ने जब गुरु की सुचनानुसार गड्ढा खोदा तो उनमें से स्वच्छ एवं मधुर जल निकला । गुरु भी प्रसन्न हुए, चलो अब पानी के लिए कहीं जाना नहीं पडेगा ।

और फिर तो यह चमत्कार की बात पहले साधुमंडली में और बाद में श्रोताजनों में फैलने लगी और देखते ही देखते मानव समुदाय वहाँ उमड पडा । कुछ लोगों ने तो उस खड्डे से थोडे दूर बालू में दूसरे खड्डे भी खोदे परंतु उनमें से मीठा पानी नहीं निकला । तब उनकी गुरु के प्रति श्रद्धा अत्यंत बढ गई ।

इस श्रद्धा को और भी अधिक दृढ बनानेवाली एक दूसरी घटना भी वही साधुमंडली के निवास दरम्यान घटी । एक बार साधुओं को मालपुआ खाने की इच्छा हुई पर घी के बिना यह कैसे संभव हो सकता था ? उन्होंने अपनी कठिनाई गुरु को बताई । हँसकर गुरु बोले, 'इसमें क्या ? तुम तो मालपुआ ही खाना चाहते हो न ? खड्डे में से पानी लेकर उससे बना लो । वह घी ही है । बाद में हमारे पास घी आए तब सागरदेव को इस्तमाल किया हो उतना घी दे देना ।'

साधुओंने गुरु के वचन में विश्वास रखकर पानी की मदद से मालपुए बनाए । लोगों ने जब यह बात सुनी तो मारे खुशी के उछल पडे । अब तो साधुओं को सेवा और मेवा दोनों मिलने लगा । विपुल मात्रा में बनाये गए उन मालपुओं का प्रसाद सैंकडों लोगों में बाँटा गया । ऐसा प्रसाद पाकर लोग धन्यता का अनुभव करने लगे ।

उस मंडली के महंत ने लोगों से बातचीत करते हुए कहा, 'साधुजीवन का रहस्य लोकोत्तर शक्ति या सिद्धि में नहीं छिपा है । साधुजीवन का मतलब होता है पवित्रता, ईश्वरप्रेम और सेवा का जीवन । शक्ति या सिद्धि तो ईश्वरकृपा से स्वतः आ जाती है परन्तु सच्चे साधु किसी भी स्वार्थ से प्रेरित होकर उसका प्रदर्शन नहीं करते, उसे महत्व भी नहीं देते और उसी में आत्मविकास की साधना का सर्वस्व समाहित है ऐसा भी नहीं मानते । यही ध्यातव्य है कि सच्चा सामर्थ्य स्वभाव को सुधारने में, मन व इन्द्रियों को वश करने में तथा ईश्वर-साक्षात्कार में विद्यमान है ।'

एकाध महिने रहकर वह मंडली जब बिदा हुई तब वहाँ उपस्थित लोगों की आँखे प्रेम व भक्ति से भीगी हो गई ।

आज भी गुरुदेव की वह शांत, निर्विकार मूर्ति का दर्शन करके दिल में उनके प्रति सम्मान की भावना छा जाती है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१४. अदभूत महापुरुष

दक्षिणेश्वर का नाम किसने नहीं सुना ?

भारत में ही नहीं, भारत के बाहर विदेशों में भी यह नाम प्रसिद्ध है । विदेशी भी उसके दर्शन को आते है । इसके साथ केवल भारत की ही नहीं अपितु विश्व की आध्यात्मिक विभूति – श्री रामकृष्ण परमहंसदेव का नाम जुडा है । उन्होंने वहीं रहकर अपने जीवन की साधना व अनमोल लीला की थी ।

कलकत्ता के गंगातट समीप शांत व एकांत स्थान में उनकी यादों का दीपक आज भी जलता है । वहाँ के पवित्र वातावरण में उनकी दीर्घकालीन तपश्चर्या एवं साधना के परमाणु आज भी विचरित होकर प्रेरणा प्रदान कर रहें हो ऐसा लगता है । इससे दर्शनार्थीयों को गहरी शांति का अनुभव होता है । किसी नयी दिव्य दुनिया में कदम रक्खा हो ऐसी अनुभूति होती है ।

सन १९४५ में प्रथम बार मैंने उस सुंदर स्थल की मुलाकात ली और कुछ दिनों वहाँ रहा । उस वक्त मेरा हृदय ईश्वरभक्ति एवं रामकृष्ण परमहंसदेव के प्रति प्रेम से परिपूर्ण था । मन में ऐसी आश थी की उनका दर्शन हो और उनकी ओर से एक नया अनुभव उपलब्ध हो ।

उन दिनों मेरा दिनरात का समय ध्यान व प्रार्थना में ही बीतता था । मेरे अंतर में शांति के लिए जो तडपन थी उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता ।

उन दिनों उस शांत, एकांत व रमणीय स्थान में रामकृष्णदेव के जीवनप्रसंग मेरे दृष्टिपट पर आने लगे । एक दिन तो एक अजीब अनुभव हुआ । दक्षिणेश्वर के पंचवटी स्थान में मैं जहाँ बैठता था वहाँ मुझे एक अजीब महात्मा का दर्शन हुआ । उन्होंने लाल वस्त्र पहना था और वे बिना कुछ बोले चक्कर लगाते थे और बीच बीच में कुछ देर मेरे पास बैठे रहते थे । उनके नैनों से आँसू की धारा बहती थी ।

ईश्वरीय प्रेम में आकंठ निमग्न वह महापुरुष सचमुच बडे दर्शनीय व अदभुत थे । एक बार मन में विचार आ गया – ईश्वरदर्शन का रामबाण इलाज क्या है, यह उनसे पूछ लूँ । वे महापुरुष मेरे विचार को मानो जान गये । उन्होंने मेरे समीप आकर अपनी अश्रुचूती हुई आँखो की ओर संकेत किया । इस तरह उन्होंने सूचना दी कि ऐसा प्रेम हो, एसा प्रखर प्रेम हो, तभी ईश्वरदर्शन हो सकता है ।

मुझे इस सूचन से संतोष हुआ । उनकी आँखो से अजस्र आँसू निकलते और वे माँ माँ पुकारते रहते ।

वे कौन होंगे ? कोई भक्त होंगे ? सर्व सिद्धिप्राप्त महापुरुष होंगे ? आत्मभाव में आसीन योगी होंगे या रामकृष्ण परमहंसदेव स्वयं होंगे ? वे कुछ भी हों पर प्रेरणादायक थे इसमें कोई संदेह नहीं ।

तीनचार दिनों के बाद वे अप्रत्याशित ढंग से अदृश्य हो गये । वे कहाँ चले गये इसका कुछ पता नहीं चला । उनकी आकृति स्मृतिपट पर अंकित हो गई । बरसों बीत गये किंतु उनकी छाप ऐसी ही अमिट है और रहेगी ।

अमृत बरसानेवाली, अलौकिक, प्रेमभरी वह आकृति मानो रामकृष्णदेव के शब्दों में संदेश दे रही है: 'संसार में जब किसी स्वजन की मृत्यु होती है तो उसके शोक में मानव खून के आँसू रोता है । प्रियजन के वियोग से या धंधे में घाटा होने से अथवा ऐसी ही आपत्ति आने से फूट-फूटकर रोने लगता है किन्तु ईश्वर के लिए कौन रोता है, अरे एक भी आँसू कौन बहाता है ? उनके प्रति पवित्र व सच्चा स्नेह किसे है ? फिर ईश्वर कैसे मिलेगा ?'

गीता में ईश्वरप्राप्ति के विभिन्न मार्गो की चर्चा करते हुए प्रकाश डाला गया है कि, 'हे अर्जुन, समस्त विश्व जिनके आश्रय में रहता है और जो इस सृष्टि में व्याप्त है, वे परमात्मा भक्ति द्वारा मिल सकते हैं ।'

यह श्लोक भी उन महापुरुष की चर्चा करते वक्त याद आता है । दक्षिणेश्वर के उन महापुरुष को मेरे सप्रेम वंदन, बार-बार वंदन । वे महापुरुष अद्वितीय भक्ति एवं प्रखर प्रेम के मूर्तिमान स्वरूप जैसे थे । ऐसे महापुरुषों को मुख खोलने की जरूरत नहीं होती । खास बात तो यह होती है कि जो हेतु शास्त्राध्ययन और प्रवचनों से नहीं सिद्ध होता, वह उनके दर्शन मात्र से सिद्ध हो जाता है । उनकी वाणी नहीं अपितु आचरण बोलता है । ऐसा महापुरुष जहाँ भी और जिस रूपरंग में रहते हों उस देश और समग्र विश्व के लिए निधि के बराबर है । कोई भी प्रजा ऐसे सिद्ध-तपस्वी महापुरुषों के लिए गौरव ले सकती है । आँख खुली हो तो उनसे प्रेरणा प्राप्त कर आगे बढती है ।

भारत की पुण्यभूमि में आज भी ऐसे अज्ञात ईश्वरप्रेमी महापुरुष कहाँ और कितने होंगे यह कौन कह सकेगा ? लेकिन वह है और इसीसे यह देश खुशनसीब है ।

१५. अवधूत महापुरुष का अनुग्रह

हिमालय की पुराण-प्रसिद्ध देवभूमि में आज भी सिद्ध पुरुष रहतें हैं या युग के प्रभाव से उनका लोप हो गया है ? ऐसा प्रश्न उस भूमि में आने की ईच्छा रखनेवाले जिज्ञासु-जन करते हैं । इस सवाल के पूर्वार्ध का उत्तर यह है कि हिमालय में अनेकों प्रकार के महात्मा हैं । किन्तु सच्चे अर्थ में जिन्हें संतमहात्मा कहा जाये ऐसे शायद ही और सच्चे जिज्ञासुओं को ही मिलते है ।

साधुओं के मुख्यतया तीन प्रकार है ।

१) बिलकुल मामूली भेषधारी साधु, जो एक या दूसरे कारण से घर छोड साधु (बावा) बन गये होते है । उनका जीवन ध्येयहीन होता है । वे कोई साधनात्मक प्रवृति नहीं करते, आत्मिक उन्नति के लिए लापरवाह होते हैं तथा अनेक व्यसनों के शिकार होते हैं । बाह्य दिखावे से ही उन्हें साधु कह सकते है, भीतर से देखा जाये तो उनमें आदर्श मानव के लक्षणों का भी अभाव होता है ।

२) दूसरा वर्ग विद्वान साधुओं का है । ये महापुरुष अध्ययन व अध्यापन में रत रहते है । जीव, जगत एवं ईश्वर के चिंतन में तथा उनकी चर्चा में समय बिताते है । ऐसे साधु जीवन के ध्येय के बारे में जाग्रत एवं सक्रिय होते है । प्रधानतया वे शांकर वेदांत को ही महत्व देते है । इनमें ज्यादातर महापंडित व विचक्षण विचारक भी होते हैं ।

३) तीसरा प्रकार साधक श्रेणी के साधुओं का है । वे अल्प संख्या में हैं । वे सर्वोत्तम आत्मिक विकास में आस्था रखते है, साधनापथ पर आगे ही आगे कदम रखने की यथाशक्ति कोशिश करते है । विवेक एवं वैराग्य की बुनियाद मजबूत बनाकर जप एवं ध्यानयोग की सतत साधना से प्रभु की पूर्ण कृपा के अनुभव के लिए अभ्यास को आगे बढाते है और उनके समागम में आनेवालों को अपने सदुपदेश से आध्यात्मिक जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करते है ।

साधुओं के इसी तीसरे प्रकार से सिद्धों का चौथा प्रकार स्वतः पैदा होता है और साधक कोटि के साधुओं की अपेक्षा उनकी संख्या कम होती है । वे विरले ही होते है । साधना में आनेवाले प्रलोभन एवं बाधाओं को पार कर, सिद्धिओं को गौण समझकर, हिंमत व लगन से आगे बढनेवाले साधक अत्यल्प होते है । ज्यादातर साधक तो मझधार में ही रुक जाते है, किनारे तक नहीं पहुँच पाते । अतः अधिकतर जिज्ञासु जन जिनकी ईच्छा रखते हैं, जिनके दर्शन के लिए तडपते है, ऐसे महात्मा तो हिमालय में भी शायद ही मिलते हैं । इस संबध में तुलसीदासजी के रामचरितमानस से उद्दरण देना अनुचित न होगा : 'बिन हरिकृपा मिले नहीं संता ।' अर्थात् हरिकृपा के बिना सच्चे संत नहीं मिलते । फिर भी इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं ।

हिमालय की पुण्यभूमि में आज भी सच्चे जिज्ञासुजनों को सच्चे संतो के दर्शन का लाभ मिलता है । सच्चे दिल से खोजा जाय तो ईश्वरकृपा से संतदर्शन होता है । इस बारे में एक सत्यघटना यहाँ पेश करता हूँ ।

गुजरात के एक सज्जन हरिद्वार होकर ऋषिकेश आए थे । यहाँ का कुदरती सौंदर्य उन्हें भा गया और इसलिए धर्मशाला के एक कमरे में रहकर साधना करने लगे । ऋषिकेश में उस वक्त रहनेवाले प्रतापी पुरुषों का सत्संग उन्होंने किया फिर भी असाधारण सामर्थ्यवान अवधूत को मिलने की इच्छा पूर्ण न हुई

। दो साल पूरे हुए फिर भी इच्छा पूरी न होने से श्रद्धा डोलने लगी । उन्होंने सोचा, घोर कलियुग के प्रभाव से सच्चे महापुरुषों का अभाव हो गया है अथवा तो वे जंगल की गुफा में चले गए हैं ।

इस बीच, हर वर्ष की तरह, महाशिवरात्री को ऋषिकेश के निकट स्थित वीरभद्र में बडा उत्सव मनाया जाता था । वहाँ जाने वे पैदल चल निकले किन्तु देढ मील चलने पर वातावरण बदल गया । बादल उमडकर घिर आए और बरसात होने लगी । वे सज्जन उलझन में पड गए, वीरभद्र तो जाना ही चाहिए । एक ओर मुसीबत खडी हुई । वे रास्ता भूल गये । ऐसे घने जंगल में जाए तो जाए कहाँ ?

इतने में देखा कि थोडी दूर वृक्षों के पीछे से धुआँ निकलता था । वृक्षों की घटा के पीछे देखा तो धूनी सुलग रही थी और देह पर भस्म मलकर, केवल कौपीनधारी, एक बडी जटावाले महात्मा पद्मासन लगाकर ध्यान में बैठे थे । अचरज की बात यह थी कि महात्मा के बैठने की जगह और धूनी के ईर्दगिर्द की जगह बिल्कुल भीगी नहीं थी । मुशलधार बारिश थी फिर भी साधु की काया व धूनी सूखी थी । यह देख वह सज्जन दंग रह गये । उन्होंने जटाधारी महात्मा को साष्टांग प्रणाम किया । साधुने मुस्कराते हुए कहा, 'इस धूनी के करीब आ जाओ, बारिश तुम्हें भीगा नहीं सकेगी । तुम्हें वीरभद्र जाना है पर मेरी इच्छा से तुम रास्ता भूलकर यहाँ आए हो । बिना मेरी इच्छा के कोई मुझे देख नहीं सकता ।'

'कौन हैं आप ?'

'अवधूत हूँ मैं और यथेच्छ विचरण कर सकता हूँ । तुम में जो अश्रद्धा फैल गई है उसे दूर करने तथा तुम्हें सहायक होने के लिए मैंने दर्शन दिया है । लो, यह प्रसाद खा लो, इससे तुम्हारी थकान दूर हो जाएगी ।'

अवधूत के दिये फल खाने से उन्हें तृप्ति हुई । अवधूत ने पूछा, 'हमारे जैसे अवधूत का दर्शन तुम क्यों चाहते थे ?'

'मुझे दीक्षा लेनी है इसलिए ।'

'दीक्षा क्यों ? मेरे दर्शन हुए इससे दीक्षा मिल गई । तुम अब आसानी से तरक्की कर सकोगे । मैं जो मंत्र दूँ उसका जाप करते रहना ।'

अवधूत ने मंत्र दिया और आगे कहा, 'वीरभद्र जाना है न ?'

'कोई खास ईच्छा अब तो नहीं है ।'

'फिर भी निकले हो तो जाके आओ, तुम्हें रास्ता मिल जाएगा । मैं जाता हूँ ।'

उस गुजराती सज्जन ने सिर झुकाकर प्रणाम किया तब अवधूत ने उसके सिर पर हाथ रखा । वह हाथ इतना शीतल था कि सज्जन आश्चर्यचकित हो गये । जब सिर उठाकर देखा तो अवधूत गायब हो गये थे । सिर्फ धूनी सुलग रही थी, उसके अधिष्ठाता देव वहाँ नहीं थे । उन्होंने धूनी की राख कपडे में बाँध ली और बारिश थम जाने से यात्रा के लिए चल पडे । वीरभद्र का मार्ग स्वतः मिल गया । अवधूत की कृपा से उनकी कायापलट हो गई ।

उसी अनुभव याद कर वे कहते, 'हिमालय में आज भी समर्थ महापुरुष हैं किंतु वे सहज कुतूहल से नहीं मगर सच्ची जिज्ञासा हो तभी मिलते है । बिना सच्ची भूख या लगन के ऐसे पुरुषों के दर्शन नहीं होते । आज वैसी जिज्ञासा किसे हैं ? जिसे है, उसे मिलते ही है, उसे निराश नहीं होना पडता ।'

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१६. मोटा की मुलाकात

'मेरे गुरु 'धूनीवाला दादा' के नाम से पहचाने जाते थे । वे एक समर्थ सिद्धपुरुष थे और मध्यप्रदेश में रहते थे । मेरा आत्मविकास उन्होंने किया था । उन्होंने मेरी बडी भयंकर कसौटी की थी और तत्पश्चात अपनी कृपा बरसाई थी । उनकी कृपा ही मेरा सबकुछ है । उनकी आज्ञा थी कि लोगों को साधना-पथ में ले जाने के लिए आश्रम बाँधना और वह भी दक्षिणवाहिनी नदी के तट पर ही । उनकी आज्ञानुसार मैंने आज तक तीन आश्रम बनाये हैं । एक यहाँ सुरत शहर में, एक नडियाद में और एक दक्षिण में कावेरी-तट पर कुंभकोणम् में । ये सभी आश्रम दक्षिणवाहिनी नदी के किनारे पर, गाँव से दूर जंगल या स्मशान में हैं । बस्ती के साथ उन्हें कोई संबंध नहीं है । जिन्हें साधना करके आगे बढना है उन्हींको आश्रम में रखता हूँ । मेरा उद्देश्य यही है कि यहाँ रहकर मनुष्य शांति से साधना करे और सच्चे तरीके से जीवन जीने का बल प्राप्त करे । आप उस स्थान में आये इससे मुझे बडा आनंद हुआ ।'

ये उदगार थे पूज्य मोटा के जो भक्तो में हरि ओम महाराज या मोटा के नाम से प्रसिद्ध है । उनका आश्रम सुरत से छ मिल दूर तापी के दूसरे किनारे पर है । हम आश्रम के उस निवासस्थान पर पहुँचे तब खिडकी में से मुझे देख उन्होंने 'आईए प्रभु, पधारिये' कहकर मीठी, मधुरी, सरल, निखालस व नम्रतापूर्ण वाणी से मेरा सत्कार किया ।

पलंग पर लेटे ही उन्होंने कहा, 'रीढ़ की हड्डी का मनका खिसक गया है इसलिए बैठने में दिक्कत होती है, अतः लेटा हूँ । डोक्टर आपरेशन के लिए कहते हैं पर मैंने तो ईश्वर पर छोड़ दिया है । वही ठीक कर देगा ।'

मोटा की ईश्वरपरायणता, नम्रता व गुरुभक्ति बडी भारी थी । उन्होंने कहा, 'गुरु महाराज ने कभी भी कायर होना नहीं सिखाया । कायरता मेरी प्रकृति में ही नहीं है । गुरु कुछ भी कहें वह करने तैयार रहता हूँ । एक बार गुरु ने कसौटी करने के लिए आज्ञा की कि सागर में कूद पडो और मैं कूद पडा । जिसने आज्ञा दी उसीने हमारी रक्षा भी की ।'

'शंकराचार्यजी के जीवन में भी ऐसा प्रसंग आता है न !' मेरे स्मरणपट पर शंकराचार्य उपस्थित हुए ।

'वह प्रसंग कह सुनाईए, प्रभु !' मोटा बोले, 'आपके मुँह से कुछ सुनाइये, मैं पढा-लिखा नहीं हूँ ।'

मोटा की नम्रता भी बहुत उच्च कोटि की थी । मैंने कहा, 'जो सच्चा पढना है वह तो आपने पढ लिया है । किसी ओर पढाई की क्या जरुरत हैं ?'

'ना, ना, प्रभु सुनाइए न ।'

'शंकराचार्यजी नर्मदा में स्नान करते करते सामने के किनारे पहूँच गये और वहाँ से अपने शिष्यों के पास कपडे माँगे । नदी में कूदने की किसी में हिम्मत न थी अतः सब एक-दूसरे का मुँह देखने लगे । आखिरकार एक श्रद्धालु शिष्य ने कपडे ले नदी में चलना शुरु किया । उसने जब एक कदम रखा तो वहाँ एक सुंदर कमल हो गया । इस तरह प्रति पद पर कमल की सृष्टि होती गई और उस पर पैर रखकर वह शंकराचार्य के निकट पहूँच गया । शंकराचार्य ने उसकी श्रद्धाभक्ति देखकर उसे धन्यवाद दिया और उसके

पैर के नीचे कमल प्रकट हुए थे अतः उसका नाम पद्मपादाचार्य रखा । कितनी अदभूत है श्रद्धा की महिमा !'

'वाह, प्रभु वाह !'

थोडी देर बात करने के बाद पूज्य मोटा ने हमें आश्रम दिखाने का प्रबंध किया ।

आश्रम का वातावरण बडा ही शांत व सुंदर था । निकट ही तापी नदी का प्रवाह बह रहा था जिससे आश्रम की शोभा में चार चाँद लगते थे । आश्रम बहुत छोटा है पर उसका काम बडा है । देश में आश्रम तो बहुत हैं पर यह आश्रम विलक्षण है । यहाँ अन्य किसी आश्रम की तरह कोई प्रवृति नहीं होती है किन्तु आत्मविकास की साधना की ओर ही साधको का ध्यान खींचा जाता है । साधकों या एकांत-प्रेमीयों को रहने के लिए अलग कमरे के व्यवस्था है जिसमें बाथरूम और पैखाने की स्वतंत्र व्यवस्था है तथा झूले भी रखे गये हैं । पूर्वसंमति प्राप्त कर कोई भी स्त्रीपुरुष उस कमरे में सात, चौदह या इक्कीस दिन रह सकता है । उस समय संपूर्ण एकांतवास करना होता है । कमरे नितांत बंद रखे जाते है । दिवार में एक खिडकी है जिसमें भोजन की थाली रखी जाती है और निर्धारित समय पर चा या दूध भी रखा जाता है । एकांतवासी व्यक्ति कपडे भी उसी जगह रख देते है । वहाँ से हररोज कपडे धोने के लिये लिए जाते हैं । सुबह चार बजे उठना और रात को आठ बजे सोना अनिवार्य माना जाता है । मंगलवार के प्रभात जब नये एकांतवासी आते थे उस वक्त मोटा उनके सामने प्रवचन करते थे । उनकी वाणी का लाभ व्यवस्थित रूप से तभी मिल सकता था ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१७. हरेकृष्ण मंदिर की मुलाकात

'अगर पूना जाना हो तो इन्दिरा एवं दिलीपकुमार रॉय को अवश्य मिलना । आपको मिलकर उन्हें आनंद होगा । पहले तो प्रायः हर साल वे मसूरी आते और हमारे साथ कुछ दिन रहते थे किंतु पिछले तीन-चार साल से नहीं आये । पूना में वे हरेकृष्ण मंदिर में रहते हैं ।' ये उदगार थे इन्दिरादेवी की माता और मसूरी की सबसे बडी होटल – सेवोय होटल के मालिक स्व. किरपाराम की सेवाभावी भक्त पत्नी के । गत साल ही वे मुझे उनकी होटल में ले गयीं उस वक्त उनके मुख से ये उदगार निकल पडे ।

उनके शब्दों में मातृवत्सलता प्रकट होती थी, साथ ही उनकी मेरे प्रति सम्मान की भावना भी व्यंजित होती थी । मैंने उत्तर देते हुए, एक प्रकार का दिलासा देते हुए कहा, 'अगर पूना जाना होगा तो ईश्वरेच्छा से उन्हें अवश्य मिलूँगा । उन्हें मिलकर मुझे भी खुशी होगी ।' मेरे उत्तर से उन्हें संतोष हुआ ।

वे स्वयं विवेकी, संस्कारी, धार्मिक एवं भक्तिपरायण थी । मसूरी के लायब्रेरी बाजार में नवनिर्मित लक्ष्मीनारायण मंदिर की रचना में उन्होंने एवं उनके पतिने योगदान दिया था और काफि दिलचस्पी ली थी । वे वहाँ मेरे प्रवचनों का आयोजन करते थे और प्रायः मेरे पास आया करते थे ।

ऐसी संस्कारी एवं दयालु माता को अपनी कृष्णप्रेमी पुत्री के लिए प्यार हो, यह बडी स्वाभाविक बात है । यद्यपि वे इन्दिरादेवी की सौतेली माँ थी फिर भी उन्हें इन्दिरा के लिए सच्ची ममता थी । उसी ममता से प्रेरित हो उन्होंने मुझे उपरोक्त शब्द कहे थे ।

यों तो मुझे गत साल भी पूना जाना हुआ था पर हरेकृष्ण मंदिर की मुलाकात का अवसर उपस्थित न हुआ । इस वर्ष पुनः पूना में रहना हुआ तो वह योग उपस्थित हो गया । अलबत्ता मेरे अंतर्मन में वहाँ जाने का विचार तो था हीं परंतु उसका आचरण अप्रत्याशित ढंग से हो गया । वह दिन सोमवार ता १९-२-१९६८ था । उसी रोज शाम के समय मोटर में घूमने निकले थे और हरेकृष्ण मंदिर की बात निकली तो मैंने मोटर उसी ओर ले लेने की सूचना दी ।

थोडी ही देर में हम उस मंदिर के रमणीय, शांत व विशाल मकान के पास आ पहुँचे । मंदिर के आंगन के उद्यान को देखकर हमें अत्यंत हर्ष हुआ । हरेकृष्ण मंदिर एक सुंदर मकान है, उसका आकार न तो मंदिर जैसा है न ही उस पर किसी परंपरागत शिखर है । उसके प्रधान प्रवेशखंड या होल में ही मंदिर है । वहाँ राधाकृष्ण की छोटी पर नयनरम्य प्रतिमाएँ हैं । नीचे एक ओर श्री अरविंद तथा दूसरी ओर मीरां की तसवीर है । दिवारों पर ईसामसीह, चैतन्य महाप्रभु इत्यादि संतो के चित्र हैं । राधाकृष्ण के पास देवी की मूर्ति भी हैं । समस्त स्थान सुंदर, शांत, प्रेरणात्मक एवं आह्लादक है ।

हम होल में प्रवेशित हुए उस वक्त एक बहनने मंदिर की प्रतिमाओं का आवरण दूर किया । कुछ देर उस वातावरण का लाभ उठाते हुए खडे रहे और इन्दिरादेवी को अनुकूलता होने पर हमसे मिलने की सूचना भिजवाई ।

चार-पाँच मिनट में ही इन्दिरादेवी आईं । उन्होंने सर्वप्रथम राधा-कृष्ण को प्रणाम किये और बाद में हमको । मैंने भी प्रत्युत्तर में सप्रेम नमस्कार किया । मैंने मेरा परिचय दिया और उनकी माताजी का संदेश दिया । यह सुन वे प्रसन्न होकर बोली, 'यहाँ भी थोडा लाभ दीजिए, हमारे कृष्ण को भी ज्ञान की जरूरत है ।'

'वे (कृष्ण) तो परम ज्ञानी है । उनका ज्ञान तो अक्षय है, अमिट है । मैं तो लाभ देने नहीं, लेने आया हूँ ।'

'फिर भी आपको लाभ देना ही पडेगा । थोडी देर और रुकिये । अभी ७-३० से ८-३० तक कीर्तन होगा । कीर्तन पहले तो हररोज होता था पर अब एकांतर दिन को और रविवार को सुबह साढे नव बजे होता है ।'

'किन्तु आज तो मैं इसका लाभ नहीं ले सकूँगा क्योंकि आज रात को मेरा प्रवचन है । फिर कभी ।'

'फिर कब आएँगें ?'

'कल ही बंबई जा रहा हूँ । साल में एक बार यहाँ आना होता है इसलिए अब तो अगले साल इश्वरेच्छा होगी तो जरूर आऊँगा ।'

यह सुनकर इन्दिरादेवी के मुख पर विषाद के भाव छा गये । उनमें जो नम्रता, मधुरता तथा प्रेमभाव प्रकट होता था, वह उसके अंतरतम का परिचायक था । उनको भक्ति का बोज नहीं लगता था, भक्ति उसकी नस-नस में व्याप्त हो गई थी । उन्हें देखकर व उनसे बातचीत करने पर यह स्पष्ट परिलक्षित हो गया ।

इन्दिरादेवी सचमुच देवी थीं – प्रेम व भक्ति की प्रतिमूर्ति, संसार के सरोवर में खिली कोई इन्दिरा (निल कमलिनी) । भगवान कृष्ण की कृपा की बात निकली तो मुझे एक घटना याद आ गइ । मैंने कहा, 'भक्त के जीवन में सबकुछ ईश्वर की इच्छानुसार उसकी परम व असीम कृपा के परिणामस्वरूप होता है, यह सत्य है । मैं कोई बडा भक्त तो नहीं पर उनके अनुग्रह के ऐसे अनुभव मुझे बार-बार होते रहते हैं । सच कहूँ तो मेरा समस्त जीवन और उसमें जो कुछ भी होता है, वह उसीके अनुग्रह का फल है ।

उस संबंध में एक घटना कहना चाहूँगा । मसूरी में मेरे नित्य प्रवचनों का प्रारंभ नहीं हुआ था उस वक्त मेरा सर्वप्रथम जाहिर प्रवचन चित्रशाला में आयोजित किया गया । जनमाष्टमी का दिन था । चित्रशाला में मसूरी के बडे-बडे प्रतिष्ठित स्त्रीपुरुषों को निमंत्रित किया गया था । होल खचाखच भर गया था । गुरुजीने स्टेज के पीछे की दिवार पर उन्हीं के हाथों बनाया गया कृष्ण का चित्र रखा था । उसको ताजे गुलाब की माला पहनाई थी ।

प्रवचन पूरा हुआ और कृष्ण भगवान की धून भी पूरी हुई । इसी वक्त एक अदभूत घटना घटी । गुलाब की माला में से एक फूल मेरे सिर पर गिरकर स्टेज पर रुक गया । यह देख सबको ताज्जुब हुआ । मुझे लगा कि भगवान कृष्ण ने मुझे आशीर्वाद दिया ।

इसके बाद दूसरे वर्ष मसूरी में गांधीनिवास सोसायटी में मेरे प्रवचनो की पुर्णाहूति हुई तब गुरुजी ने इसी तरह मेरे पीछे की दिवार पर कृष्ण की वही तसवीर लगाई थी । उसकी ताजे फूलों की माला में से एक फूल मेरे सिर पर गिरा । भगवान कृष्ण ने मानों इस घटना द्वारा कहा, 'मैं आपके इस सेवाकार्य से संतुष्ट हूँ ।'

यह घटना मुझे हमेशा याद आती है और प्रतीत होता है कि उसकी कृपा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता । इस बीच बाहर घूमने को निकले दादाजी-दिलीपकुमार रोय आ पहुँचे ।

इन्दिरादेवी ने जब उनको मेरा परिचय दिया तब पीले वस्त्रो में सज्ज, कोई तपस्वी जैसे लग रहे दादाजी को सचमुच आनंद हुआ । वे बोले, 'हम मसूरी गये थे उस वक्त वे मिले थे ?'

'नहीं, माताजी उन्हें पीछले चार साल से ही पहचानती है और अभी अभी हम मसूरी नहीं गये ।'

वे दोनों बंगाली में बात कर रहे थे ।

दिलीपकुमार ने पूछा, 'आज यहाँ वे कुछ सुनाएँगें ?'

इन्दिरादेवी ने ना कहकर उसका कारण दिया ।

'तो फिर कब आएँगें ?'

'फिर आना तो ईश्वरेच्छा से अगले साल ही होगा ।'

दिलीपकुमार को मानों यह अच्छा न लगा । उन्होंने और इन्दिरादेवी ने कहा कि प्रवचन में थोडी देर बाद जाइएगा पर यह संभवित न था ।

उस देवी के प्रेम, सदभाव, विवेक एवं नम्रता से मैं बडा प्रभावित हुआ । उन दैवी आत्माओं को देख मुझे अत्यंत हर्ष हुआ । इन्दिरादेवी ने हमारे साथ घूमकर हमें मकान के ईर्दगिर्द की रमणीय जगह दिखाई । वहाँ स्थान स्थान पर हनुमानजी, सांईबाबा तथा देवी-देवताओं की मनोहर मूर्तियाँ थी जिससे वह स्थान आकर्षक लगता था ।

इन्दिरादेवी जब बाहर बिदा देने आए तब मैंने मेरे माताजी का परिचय देते हुए कहा, 'ये मेरी माताजी है और मेरे साथ ही रहती हैं ।'

वे माताजी के निकट आकर भावविभोर हो बोल उठीं, 'मैं भी आपकी बेटी हूँ ।'

इन्दिरादेवी व दिलीपकुमार रोय की वह छोटी-सी मुलाकात सचमुच चिरस्मरणीय हो गई । उनके सुखद सहवास में ज्यादा देर रहने का सदभाग्य मिला होता तो अच्छा होता किंतु सत्पुरुषों का समागम ईश्वरकृपा के बिना संभवित नहीं होता और होता है तब आनंदप्रदायक होता है ।

अरविंद आश्रम में इन्दिरादेवी ने श्री दिलीपकुमार रोय को अपने गुरु के रुप में स्वीकृत किया तब यह जानकर आश्रमवासीयों को बडा ताज्जुब हुआ था । यह बात जब श्री अरविंद के पास पहुँची तब उन्होंने कहा, 'गुरु का संबंध अपने हृदय की भावनानुसार किसी के भी साथ स्थापित किया जा सकता है । यहाँ रहनेवालों को मुझे ही गुरु बनाना चाहिए, ऐसा नहीं है ।' इन उदगारों में श्री अरविंद के हृदय की विशालता का दर्शन होता है ।

इन्दिरादेवी के अंतरात्मा ने गुरुभाव की जो अनुभूति की थी वह पिछले वर्षो में और आज भी ऐसा ही अडिग-अक्षय है । धन्य हो उस गुरु को और उस शिष्या को भी । आत्मिक मार्ग में जिन्हें रुचि हैं उनके लिए उनके दर्शन अत्यधिक प्रेरणादायक सिद्ध होगा ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१८. सिद्ध महात्मा कृष्णाश्रमजी

सुंदर प्रशांत भागीरथी छलछल करती हुई बह रही है । इसके आसपास एकांत अरण्य व आसमान से बातें करनेवाले हिमाच्छादित पर्वत है । उस असाधारण आहलादक दृश्य को देख ऐसा लगता है कि यहीं रह जाये और थोडा समय तपश्चर्या करके आत्मानुभव से जीवन को कृतार्थ करें ।

उत्तराखंड में गंगोत्री का सुंदर प्रदेश प्रथम दर्शन में ही मन को मुग्ध कर देता है और उसे आध्यात्मिक भावनाओं से भर देता है । इसीसे हर साल हजारों यात्री उनका पुण्यप्रवास करते हैं और जब वापस लौटते हैं तो उस पुनित पुराणप्रसिद्ध प्रदेश की स्मृति को भी साथ लेकर चलते है ।

हिमालय के उस गंगोत्री धाम में भगवती भागीरथी के सामने के किनारे पर एक छोटी-सी कुटिर में एक महापुरुष विराजमान है । हिमालय की उस ऋषिमुनि-सेवित भूमि में बसनेवाले महाप्रतापी महात्माओं में से एक को देखना हो तो आइए उनका दर्शन करें ।

गंगोत्री की ठंडी में भी वे दिगंबर दशा में शरीर को स्थिर और सीधा रखकर पद्मासन में बैठे हैं । उनकी तन की त्वचा श्याम होते हुए भी आभायुक्त है । आँखे शांत, तेजस्वी एवं विशाल है और मस्तक पर जटा सुशोभित है । वे पराल पर बैंठे है । दर्शनार्थी आते हैं और जाते हैं फिर भी वे अडिग रहते है । घंटो तक पद्मासन में बैठे रहते हैं । बरसों से मौनव्रत रखते हैं, किसीसे बातचीत नहीं करते फिर भी यदि कोई जिज्ञासु जन प्रश्न पूछते हैं तो जमीन पर उँगली से लिखकर उत्तर देते हैं । वे जवाब बडे ही महत्वपूर्ण और संक्षिप्त होते हैं ।

एक जिज्ञासुने एक बार हिंमत करके उनसे प्रश्न पूछा, 'महाराज, जीवन का ध्येय क्या है ?'

उन्होंने उँगली से जमीन पर लिखकर फौरन उत्तर दिया, 'अपने को पहचानना ।'

इससे जिज्ञासु के मन का समाधान हो गया । स्वरूप का साक्षात्कार, सच्चिदानंद रूप परमात्मा का दर्शन अथवा आत्मानुभव ही जीवन का ध्येय है इसकी प्रतीति हो गई ।

कभी महापुरुष की इच्छा हो या उन्हें प्रेरणा हो तो वे बिना पूछे भी उत्तर देते हैं । वैसे ही एक घटना की बात कहूँ । उत्तरप्रदेश के धनिक, सुविख्यात पुरुष एक बार गंगोत्री की यात्रा पर गये । उनके साथे एक औरत थी जो उनकी पत्नी न थी । उन्होंने उनकी मुलाकात ली ।

उनकी पत्नी का देहांत हो गया था और इसके बाद एक बेघर, बेसहारा और साधारण ज्ञातिवाली स्त्री को परिवारजनों का तीव्र विरोध होने पर भी अपनी पत्नी के रूप में घर में रखा था । उसके साथ विधिपूर्वक शादी नहीं की थी । गंगोत्री में उसको लेकर वे उन प्रातःस्मरणीय महात्मा का दर्शन करने गये तब उन्होंने अपने जीवन की वह वैयक्तिक बात गुप्त रखी फिर भी यह बात ताडकर महात्मा ने लिखकर कहा, 'इस स्त्री को घर में रखी है सो अच्छा किया । एक दुर्दशाग्रस्त नारी का उध्धार हुआ । परंतु उसे छोडना नहीं और दुःखी भी नहीं करना । उसका बराबर ध्यान रखना ।'

यह पढकर धनिक के आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा । उस महापुरुष को मेरी इस गुप्त बात का पता कैसे चला ? इतना अवश्य समज में आया कि महात्मा की शक्ति असाधारण है तभी मेरे जीवन को जान सके हैं । यद्यपि उन्हें संतो में श्रद्धा न थी फिर भी उन महापुरुष के प्रति उनके मन में आदर पैदा हुआ । वे उनके भक्त बन गये । स्मृति को सदा बनाये रखने के लिए उन्होंने कैमेरा से तसवीरें ली । उनका अधिक समय लाभ मिल सके इस हेतु से गंगोत्री में ज्यादा समय रूके ।

गंगोत्री के उस पुण्यप्रदेश में हिमाच्छादित शैलमाला से घिरे हुए एकांत शांत आश्रम में बरसों से रहते और अपने दर्शनमात्र से प्रेरणा प्रदान करनेवाले वे महापुरुष कौन है, जानते हैं आप ? वे हैं महात्मा कृष्णाश्रमजी ।

उनके पास बैठने मात्र से या उनके दर्शन मात्र से हृदय में एक प्रकार की गहरी शांति, सात्विकता व प्रसन्नता की अनुभूति होती है । ऐसा लगता है मानों हम वाल्मीकि, वसिष्ठ या विश्वामित्र आदि महात्मा पुरुष के पास आ पहुँचे हों । वे सनातन चिरस्थायी शांति में स्नान करते हुए बैठे हैं । उन्हें किसी प्रकार का प्रवचन या भाषण करने की जरूरत नहीं होती । उनका जीवन ही शास्त्र या प्रवचन समान होता है । उनकी उपस्थिति ही विश्व के लिए आशीर्वादरूप होती है । वे अपने आदर्श ज्योतिर्मय जीवन के द्वारा ही अनेकों के जीवन में क्रांति पैदा करते हैं, प्रेरणा देते हैं या प्रकाश प्रदान करते हैं ।

कृष्णाश्रमजी की उम्र १०२ वर्ष है फिर भी उनका शरीर स्वस्थ एवं सुदृढ है । वे अपना दैनिक जीवन नियमित रूप से बीताते हैं और आत्मिक विकास की उच्च अवस्था प्राप्त करने पर भी वे स्वावलंबी है और अपने निजी कार्य खुद करते हैं ।

गत अक्तूबर महीने में एक सज्जन उनके दर्शन को गये थे । एक दिन प्रातःकाल में जब वे उनके पास गये तो उन्होंने अजीब दृश्य देखा । कृष्णाश्रमजी दिगंबरावस्था में भागीरथी में स्नान करके हाथ में पानी से भरी दो बालटियाँ लेकर अपनी कुटिर की ओर आ रहे थे । कितना सुंदर व करुण दृश्य ! यह देख वह उनके पास दौडे और बालटी लेने का प्रयत्न करने लगे परंतु विफलता मिली ।

कृष्णाश्रमजी बालटी लेकर शांति से आश्रम में आये और पद्मासन लगाकर बैठ गये । फिर जमीन पर लिखकर कहा, 'अपना काम जहाँ तक हो सके अपने हाथ से करना अच्छा । उसमें आनंद, आज़ादी और सुख है ।'

गंगोत्री में ही रहनेवाले उन्हीं के शिष्य स्वामी सुंदरानंदजी का कहना है कि कृष्णाश्रम का यह नित्य क्रम है । वे हररोज भागीरथी-गंगा से अपने हाथ से ही पानी भर लाते है ।

सुंदरानंदजी स्वामीजी के जीवन की एक दूसरी कथा भी कहते है । एक बार कुटिर के पीछेवाला पहाड गिर गया जिससे कुटिर को नुकसान हुआ और कृष्णाश्रमजी भी बडे घायल हुए । उनके सिर में व मुख में काँटे और लकडियाँ घुस गई । जख्मों से खून बहने लगा और वे बेहोश-से हो गये । यह देख सुंदरानंदजी का कलेजा फटने लगा । कृष्णाश्रमजी ने शिर, मुख व शरीर से काँटे और लकडियाँ निकालने को कहा और डोक्टर को बुलाने से साफ इन्कार कर दिया । सुंदरानंदने रोते दिल से उस सुचना के अनुसार कार्य किया । यह कार्य बहुत ही व्यथाजनक और पीडाकारी था फिर भी वे एकदम शांत रहे । उन्होंने उफ तक न की क्योंकि वे देहभाव से परे रह सकते थे । आँखे मुंदकर वे देहभाव से अतीत हो समाधिदशा में लीन हो गये । यह घटना याद कर सुंदरानंदजी आज भी गदगदित हो जाते हैं ।

आखिरी पचास सालों में हिमालय की भूमि में तीन सुविख्यात महापुरुष हो गये । एक तो ऋषिकेश के सुप्रसिद्ध संत स्वामी शिवानंद, दूसरे उत्तरकाशी के स्वामी तपोवनजी और तीसरे गंगोत्री के महात्मा कृष्णाश्रमजी ।

तीनों दक्षिण भारत में जन्मे और आत्मोन्नति के लिए हिमालय आ बसे थे । इनमें कृष्णाश्रमजी अत्यंत विलक्षण थे । गंगोत्री के शीतल प्रदेश में उनका मन लग गया और वे वहाँ रहकर योगसाधना

करने लगे । पहले वे दंडी संन्यासी थे किंतु बाद में दंड और वस्त्रों का त्याग कर दिगंबर के रूप में रहने लगे ।

शीतल पवन की लहरें जहाँ चमडी को चीर देती है और साधारण जन का रहना जहाँ मुश्किल हो जाता है ऐसे तपःपूत प्रदेश में बाह्य शरीर का ध्यान न रख आंतरिक शरीर और मन की स्थिति को सुधारने के लिए मौन धारण करके साधना में जुट गये । नर करणी करे सो नारायण होइ – उस उक्ति के अनुसार नर से नारायण बनने के लिए उत्सुक हो गये । दृढ संकल्प, उत्साह, त्याग तथा निरंतर परिश्रम के बल पर कुछ ही समय में उनको उत्तम अवस्था की प्राप्ति हो गई और उन्हें शांति मिली ।

बरसों पहले पंडीत मदनमोहन मालवीयाजी उन्हें अत्याग्रह से बनारस हिंदु विश्वविद्यालय में ले आये थे । इससे बाह्य जगत उनसे परिचित हुआ ।

मोदीनगर वाले गुजरलाल मोदी उन्हें प्रायः चार साल पहले मंदिर का उदघाटन करने मोदीनगर में ले आये थे । कृष्णाश्रमजी ने कहा था, 'मोही यहाँ आके अनशन करने को तैयार हुआ था, इसलिए मैंने उनके साथ जाने की बात मान ली ।'

शितकाल में वे उत्तरकाशी या गंगोत्री के निकट धराली के पास आकर निवास करते हैं । कृष्णाश्रमजी बरसों तक गंगोत्री में अकेले ही रहे परंतु एक दिन उनके पास एक औरत आ पहूँची । उसके रूप में उनके पास उनका शेष प्रारब्ध आया अथवा ईश्वरेच्छा आई ऐसा कहना अनुचित न होगा । वह औरत गंगोत्री के निकट बसे गाँव की परिणिता स्त्री थी । गृहक्लेश से तंग आकर गंगा में आत्महत्या करने निकली थी पर किस्मत उसे गंगोत्री खींच लाई । उसने कृष्णाश्रमजी से आश्रय देने की प्रार्थना की । महात्मा पुरुष ने करुणा से प्रेरित हो उसे पास रहने की अनुमति दी और निकट ही एक अलग कुटिर बनवा दी । तब से वह औरत उनकी सेवा में रहती है । उनका नाम उन्होंने भगवत-स्वरूप रखा है । भगवत-स्वरूप बडी विवेकी एवं सेवाभावी है और संस्कृत का अच्छा ज्ञान रखती है । दर्शनार्थियों के स्वागत का काम उसका है । गेरुए वस्त्रधारी भगवत-स्वरूप का आत्मिक विकास हुआ है ।

कुछ संकीर्ण वृत्तिवाले साधुओं ने उनके विरुद्ध प्रचार किया और उनकी निंदा करने में कोई कसर नहीं छोडी मगर कृष्णाश्रमजी पर उसका कोई बुरा असर न हुआ । वे तो अभ्यागत साधुओं का स्वागत व सेवा करते ही रहे ।

कृष्णाश्रमजी इतने महान होने पर भी उनका कोई पंथ या संप्रदाय नहीं है तथा उनके साथ सिद्धों का छोटा-बडा मंडल नहीं है । भारत की प्राचीन परंपरा के प्रतिनिधि समान वे समर्थ संत शिशु सी पवित्रता व सरलता से जी रहे हैं । प्राचीन परंपरा के या पुरानी पीढी के महान संत एक-के-बाद-एक बिदा हो रहे हैं । देहाध्यास से परे आत्मा की अनोखी दुनिया में साँस लेनेवाले कृष्णाश्रमजी हमारे बीच हैं तब तक उनके दर्शना का दुर्लभ लाभ लेना हमारे लिए आशीर्वादरूप होगा । कृष्णाश्रमजी भारत की विरल असाधारण संतविभूतिओं में से एक है । हिमालय में महान संतो की मिलनेच्छावालों को उनका दर्शन अवश्य करना चाहिए ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

१९. कर्म का फल अवश्य मिलता है

गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में रघुकुल के बारे में लिखा है,

'रघुकुल रीति सदा चली आई,

प्राण जाय अरु वचन न जाई ।'

रघुकुल में जन्मे हुए महापुरुषों की विशेषता एवं सत्यप्रियता इस पंक्ति में मुखरित है । यह विधान अन्य महापुरुषों पर भी लागु हो सकता है । अत्यधिक सहन करना पडे और सबकुछ का त्याग करना पडे फिर भी वे अपने वचन निभाते है । प्राण जाय फिर भी वचन का त्याग नहीं करते । यद्यपि आज के जमाने में वैसे पुरुष विरल ही होते हैं फिर भी उनका नितांत अभाव नहीं हैं । इतना ही नहीं, ऐसे पुरुषों की संख्या इस युग में बडी है जो बोलते कुछ हैं और करते कुछ ओर हैं । वे मानते हैं की वचन और प्रतिज्ञा, भंग करने के लिए ही हैं ।

ऐसे एक सज्जन की बात मुझे इस बारे में याद आती है । ऋषिकेश में एक व्यापारी की बडी पीढी चलती थी । वे दाने का व्यापार करते । उस वक्त सन १९४९ में ऋषिकेश से बदरीनाथ जाने के मार्ग में, देवप्रयाग में मेरा निवास था । वहाँ वे व्यापारी अक्सर आते थे । एक बार एक भाई के साथ मुझे उनके घर ऋषिकेश में रुकना पडा ।

रात के भोजन के बाद जब सत्संग खत्म हुआ तो व्यापारी ने मुझे पूछा, 'आपको हररोज कितना दूध चाहिए ?'

'पौना शेर ।' मैंने उनको पूछा, 'मगर आपको क्यों पूछना पडा ?'

'मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ । कल आप देवप्रयाग जाएँगें तो आपको नियमित रूप से पौना शेर दूध मिले ऐसा प्रबंध हो जायेगा । उसके पैसे मैं दूँगा ।'

'मगर आपको यह सब करने की कोई जरूरत नहीं । मैं आपको कष्ट देना नहीं चाहता ।' मैंने कहा ।

'इसमें कष्ट कैसा, यह तो मेरा फर्ज है ।'

'लेकिन इश्वरकृपा से मुझे कोई तकलीफ नहीं है ।'

'हाँ, जिसके चरणों में आपने समस्त जीवन अर्पित किया है, वही सम्हालेगा न ? किन्तु कृपया मुझे सेवा का मौका दें ।' उन्हों ने हाथ जोडे ।

मैंने उनकी बात का स्वीकार किया तब वे बोले, 'मेरी एक और प्रार्थना है । आप आवश्यक अनाज देवप्रयाग की दुकान से मेरे नाम पर लेते रहिए, कम-से-कम दिवाली तक । आपको मेरी प्रार्थना स्वीकृत करनी पडेगी ।'

'अब आप कुछ ज्यादा माँग कर रहे हैं ।'

तब वे हँसकर बोले, 'इसमें अतिरिक्त कुछ नहीं है । भक्त के नाते मैं अपना फर्ज समझकर ही कहता हूँ । संकोच न करो । आपको मेरी प्रार्थना स्वीकार करनी ही पडेगी ।'

मजबूर होकर मैंने उनकी माँग स्वीकृत की । उनके मुख पर खुशी लहरा गई । उन्होंने मेरा शुक्रिया माना । दूसरे ही दिन मैं देवप्रयाग गया और उस व्यापारी के कथनानुसार दूध एवं अन्य सामग्रीयाँ लेने लगा ।

*

इस बात को हुए करीब तीन महिने बीत गए पर वह व्यापारी सज्जन दिखाई ही नहीं दिये । हाँ, दो-तीन बार देवप्रयाग आ गये मगर उनसे मुलाकात न हुई ।

अब तो वह दूधवाला और दुकानदार भी मेरे पास पैसे माँगने लगे । अंत में मजबूर होकर मैंने पंडे के साथ उस व्यापारी को सूचना भेजी । पंडेने ऋषिकेश जाकर सब बातें कही । उस व्यापारी ने मुँह मोडकर कहा, 'मैंने किसी महात्मा को मेरी ओर से दूध या अनाज लेने को नहीं कहा । मैं ऐसा क्यों कहूँगा ? वह झूठ बोल रहे हैं ।'

पंडाजी ने उत्तर दिया, 'वे झूठ बोले ऐसे तो नहीं है । मैं उन्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ । वे क्यों झूठ बोलेंगे ? झूठ तो आप बोलते हैं । वचन देकर मुकर जाते हैं ?'

व्यापारी ने साफ-साफ इन्कार कर दिया, 'मैंने ऐसा कोई वचन नहीं दिया । ऐसी कोई बात मुझसे नहीं हुई । मैं ईश्वर की कसम खाके कहता हूँ की मैंने कुछ नहीं कहा ।'

इस पर पंडाजी ने साफ साफ कह दिया, 'क्यों झूठी कसमें खाते हो ? पैसा नहीं देना चाहते हो तो इन्कार कर दो । झूठ क्यों बोलते हो ?'

उसे अच्छी तरह से उत्तर देकर पंडाजी मेरे पास लौटे । सब बातें सुनकर मुझे सदमा पहुँचा । मनुष्य इतनी हद तक झूठ बोल सकता है इसकी मुझे कल्पना नहीं थी । मेरे जीवन का यह अजीब अनुभव था । कुछ मुश्किलों के बाद अनाज व दूध के सब पैसे दे दिये गये ।

*

इस घटना के डेढ महीने बाद मैं जब ऋषिकेश गया तो पता चला कि उस वचन देकर मुकर जानेवाले व्यापारी सज्जन की हालत बुरी हो गई थी । साझेदार ने धोखा दिया अतएव उसे धंधे में भारी घाटा हुआ । दुकानें बंद हो गई । यहाँ तक की गुजारा करना मुश्किल हो गया । कुदरत ने उन्हें कर्म का बदला दिया । कुदरत का कोप उन पर उतरा हो इस तरह मानों वे पश्चाताप की आग में जल रहे थे ।

उनकी इस दुर्दशा पर मुझे तरस आई, सहानुभूति हुई । आते-जाते जब जब वे मिलते तो उनके मुख पर शर्म व संकोच की लकीर खींच जाती मगर अतीत कालीन घटना जान मैं कुछ नहीं बोला ।

एक दिन वे मेरे पास आए और रोने लगे । मैंने दिलासा दिया । वे बोले, 'मुझे आपके आशीर्वाद चाहिए । मेरा दुःख तब तक नहीं टलेगा ।'

'मेरे आशीर्वाद तो आप पर है ही पर सत्कर्म कर प्रभु के आशीर्वाद हासिल करो ।'

'मैंने आपको बहुत दुःखी किया । मुझे ऐसा बर्ताव नहीं करना चाहिए था ... ।' वे ज्यादा न बोल सके । उनकी आँखो में से आँसू टपक पडे ।

'जाओ, सुखी रहो पर कर्मफल से मनुष्य को कोई बचा नहीं सकता इसलिए शुभ कर्म करो ।'

और वे चले गये । दो साल बाद हरिद्वार के बाजार में वह सज्जन फिर मिले । मैंने देखा कि उन्होंने घृत(घी) की छोटी-सी दुकान की थी और उनकी हालत अच्छी थी । आज भी वे हरिद्वार में हैं ।

कर्म का फल अवश्य मिलता है । जल्दी या देरी से - इस में अंतर हो सकता है, मगर मिलता ही है यह निर्विवाद है । किसी को कर्मफल इसी जन्म में, जल्दी मिल जाता है तो किसी और को लंबे अरसे के बाद । उस व्यापारी सज्जन को अपने कर्मों का फल जल्दी मिल गया । मनुष्य यदि सतर्क रहकर, आँख खोलकर चले तो उसे ऐसे कई किस्से सुनने व देखने मिलेंगे और इनसे जीवन-सुधार के लिए आवश्यक बल वह प्राप्त कर सकता है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२०. अज्ञात संतपुरुष

हमारी यह सृष्टि कितनी विराट और कितनी विशाल है । विज्ञान इसका रहस्य ढूँढने में प्रयत्नशील है लेकिन वह प्रयत्न स्थूल है और उसके द्वारा बाह्य जगत की जानकारी उपलब्ध होती है, अंतरग सुक्ष्म दुनिया की नहीं । हमारे इसी भौतिक जगत में एक दूसरी सुक्ष्म दुनिया है जो समर्थ संतपुरुषों की है और जिसका अनुभव आध्यात्मिक अनुभूतिओं द्वारा ही हो सकता है ।

साधना-पथ पर चलते-चलते आंतरिक दुनिया के ऐसे विस्मयकारी अनोखे अनुभव होते हैं, जो हमें सोच में डाल देते हैं और सुक्ष्म जगत के अस्तित्व में मानने को मजबूर कर देते हैं । इस संबंध में मेरा अपना अनुभव कहूँ ? यह अनुभव प्रायः सात वर्ष पूर्व का है ।

मैं अपने वतन – सरोडा गाँव में कुछ दिन रहने गया था । वहाँ हररोज शाम को एक घंटा गीता का सत्संग होता और गाँव के कई नर-नारी उसका लाभ लेते ।

एक बार मध्यरात्रि के समय, मेरे नित्य के नियमानुसार मैं ध्यान में बैठा था, उस वक्त मेरा मन एकाएक शांत हो गया और मुझे समाधि का अनुभव हुआ । उस अवस्था में मैंने देखा तो घर के द्वार सहसा खुल गये और उसमें प्रकाश छा गया । उसमें से दो संतपुरुष अंदर आए ।

मैं सोचने लगा, 'ये सतंपुरुष कौन है ?'

उनमें से एक की उम्र छोटी – करीब दस-बारह साल की थी । दूसरे वृद्ध पुरुष थे और प्रज्ञाचक्षु थे । स्वामीनारायण संप्रदाय के संत पहनते हैं वैसे लाल रंग की धोती, उपवस्त्र और मस्तक पर पगडियाँ थी । मेरे आगे आकर वे बैठ गये । मैंने सादर व सप्रेम प्रणाम किये ।

बडे संत ने कहा, 'हम आकाशमार्ग से गढडा जा रहे हैं । इसी रास्ते में आपका गाँव आया । आप यहाँ रहते हैं यह हम जानते है, इसलिए आपसे मिलने हम आ पहुँचे । आप नित्य गीता-प्रवचन करते हैं यह बडी खुशी की बात हैं । इसको सुनने हमारे स्वामीनारायण संप्रदाय के लोग भी आते हैं, यह देख हमें आनंद होता है ।'

उन महापुरुषों से मिलकर, उनकी बातें सुन मैं फूला नहीं समाया । उनके साथ ज्यादा समय बात करने की इच्छा होते हुए भी इसका अवकाश न था । उन्होंने फौरन कहा, 'अब हम जातें हैं । गढडा जाकर सुबह से पहले हमें लौटना है ।' इतना कह दोनों संत खडे हो गये ।

द्वार पर फिर प्रकाश हुआ । प्रकाश में से वे बाहर निकले । मैं भी उनके पीछे बाहर आया पर वे देखते ही देखते गायब हो गये ।

जब मेरी आँखे खुली तब उस अनुभूति का असाधारण, अवर्णनीय आनंद मेरे अंतर में विद्यमान था । उन अदभूत संतपुरुषों की आकृति मेरी नयन-झरोखे पर अंकित थी ।

वे पुरुष कौन थे ? गीता के द्वितीय अध्याय के अनुसार जब दुनिया के लोग रात को सोते हैं तब वे जागते हैं, उन्हें नींद नहीं । न जाने किस विशिष्ट काम से, किसका कल्याण करने स्वामीनारायण संप्रदाय के तीर्थस्थान – गढडा की ओर जा रहे थे ।

कुछ भी हो, उनका दर्शन आहलादक था इसमें संदेह नहीं । इस अजीब अनुभव से मुझे पता चला की इस देश में ऐसे कई महापुरुष हैं जो सुक्ष्म रूप में, अज्ञात रहकर विचरण करते हैं और अपना

जीवनकार्य करते रहते हैं । उनका दर्शन उन्हीं के अनुग्रह से किसी धन्य क्षण को होता है । जब होता है, तब आशीर्वाद समान सिद्ध होता है ।

उन अज्ञात संतपुरुषों को मेरे सप्रेम वंदन । उनकी स्मृति सदा प्रेरणा प्रदान करती रहती है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२१. साधु का अग्निस्नान

देवप्रयाग हिमालय का पवित्र स्थल है । बदरी-केदार की यात्रा करनेवालों को इसका परिचय होगा ही । बरसों पहले जब मैं एकांतवास करता था, तब वहीं रहता था । एक दिन जब मैं आश्रम में बैठा था कि एक दाढीधारी, भव्य मुखमुद्रावाले साधु मेरे निकट आ पहूँचा ।

मैंने उनका स्वागत करते हुए पूछा, तो उन्होंने उत्तर दिया, 'मेरा नाम यज्ञदेव । मैं अयोध्या के एक मठ का महंत हूँ ।'

'आप देवप्रयाग रहने आये हैं ?'

'नहीं, मैं तो बदरीनाथ की यात्रा करने निकला हूँ । यहाँ पर अलकनंदा व भागीरथी का पुनित संगम होता है और इस मनोरम पर्वतमाला का अदभूत दृश्य देखकर मेरे दिल की कली खिल गई । अतएव कुछ दिन यहाँ ठहरना चाहता हूँ ।'

'आप कहाँ ठहरे हैं ?' मैंने पूछा ।

'भागीरथी के किनारे के बैरागी साधु के आश्रम में । वह स्थल एकांत और सुंदर है और हर तरह की सुविधा होने से मुझे भा गया है ।'

'आपकी साधना अच्छी चलती है न ?'

'हाँ, साधना तो जारी है,' उन्हों ने तनिक रूककर कहा, 'पर मेरी साधना जरा अलग है ।'

'अलग यानी ?'

'मुझे यज्ञ-साधना पसंद है, उसमें ही दिलचस्पी है । भारत के भिन्न भिन्न प्रदेशों में आज तक बहुत-से यज्ञ किये हैं । इसी तरह इस स्थल पर भी यज्ञ करने की सोच रहा हूँ ।'

'यज्ञ से आपको कोई लाभ होता है क्या ?'

'हाँ, उससे मानसिक शांति मिलती है और इष्ट-कृपा का भी अनुभव होता है ।'

कुछ और बातें करके वे बिदा हुए । दूसरी बार आए तो उन्होंने कहा, 'बदरीनाथ जाने का विचार अब नहीं है, यहीं थोडे दिन रहने की प्रेरणा मिली है ।'

और बदरीनाथ जाने के बजाय वे देवप्रयाग में ही रुक गये । उन्हों ने कुछ दिनों के बाद यज्ञ शुरु किया । पूर्णाहूति के दिन अनेकों नरनारी उनके दर्शन को आए । सबने कहा, 'ऐसा विधियुक्त यज्ञ देवप्रयाग में आज तक नहीं हुआ ।'

पूर्णाहूति के दिन शाम को महात्मा यज्ञदेव को पालकी में बिठाकर उनके भक्तों, प्रशंसको एवं शिष्यों ने उन्हें सारे गाँव में घुमाये ।

दूसरे दिन महात्मा ने ब्रह्मभोजन रखा था । प्रायः सभी को भोजन का न्योता दिया गया था ।

परंतु अफसोस ... विधाता का विधान कुछ और ही था ।

बैरागी साधु के आश्रम में बडे तडके से ही भोजन की तैयारीयाँ हो रही थी । इस बीच यज्ञदेव पर्वत स्थित यज्ञवेदी पर गये । कुछ देर उसीसे आँखे मिलाकर उन्होंने मन-ही-मन में प्रार्थना की । फिर चारों ओर कोई देख तो नहीं रहा इसका विश्वास हुआ तब यज्ञकुंड में बैठ गये । नजदीक ही घी का डिब्बा था, उसको अपने पर डाल दिया । देखते ही देखते प्रदिप्त अग्नि-ज्वालाओं ने उनकी देह को घेर लिया और वे जलकर खाक हो गये ।

बहुत देर तक जब यज्ञदेवजी नीचे न लौटे तब उनके शिष्यों को चिंता हुई । जाकर देखा तो गुरुदेव का शरीर शांत हो गया था । सब भक्तों एवं शिष्यों को आश्चर्य एवं दुःख हुआ ।

थोडी ही देर में यह बात फैल गई और लोगों का समूह वहाँ उमड पडा । किसी अगम्य भावना, विचार या प्रेरणा से यज्ञदेव ने अपनी आहूति दी थी । ऐसा उन्होंने क्यों और किस हेतु से किया यह समझमें न आया । कारण कुछ भी हो पर इतना अवश्य हुआ कि यह आहूति लोगों को अशांति देनेवाली सिद्ध हुई ।

रामायण में रामदर्शन के बाद शरभंग मुनिने अपना शरीर जला दिया था ऐसा वर्णन आता है, लेकिन वहाँ साफ-साफ शब्दों में लिखा है 'योग अगनि तनु जारा' अर्थात् उन्होंने अपने शरीर को साधारण अग्नि से नहीं पर योगाग्नि से जलाया था ।

यज्ञकुंड में बैठकर देह की आहूति देने की पद्धति को आवकारदायक या तो अभिनंदनीय नहीं कहा जा सकता । ऐसा करने से किसीका कल्याण नहीं होता ।

मुझे यह समाचार सुन बहुत दुःख हुआ । विशेष दुःख तो इस बात से हुआ कि कालदेवता ने एक होनहार युवान साधु के जीवन पर आकस्मिक पर्दा डाल दिया ।

उस दिन उस बैरागी आश्रम में भोजन लेने कोई न गया ।

बहुत दिनों तक लोग बैरागी साधु, उस अग्निकुंड से आती हुई चिमटे की ध्वनि और महात्मा यज्ञदेव के मंत्रो की ध्वनि सुनते रहे । रात्रि में सुनाई देनेवाली उन आवाजों से साधु और उनके शिष्य डर जाते ।

उन आवाजों से यह साबित होता था कि यज्ञ के फलस्वरूप उस पुण्यकार्य के परिणामरूप उनकी सदगति नहीं हुई थी, मगर दुर्गति हुई थी । यज्ञदेव की आत्मा देवप्रयाग के आश्रम के शांत वातावरण में अशांत होकर भटक रही थी । इसके कई सबूत भी बाद में मिले ।

बेचारे यज्ञदेवजी ! यज्ञ की यह अंतिम आहूति बडी भारी सिद्ध हुई । इसे आहुति या बलिदान नहीं कहा जा सकता । यह तो एक प्रकार की आत्महत्या थी, इसमें कोई संदेह नहीं । महात्मा पुरुषों को ऐसी आत्महत्या से दूर रहना चाहिए । इसीमें उनका कल्याण है ।

मुझे भी इस घटना ने कुछ दिनों तक सोच में डाल दिया था ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२२. संतपुरुष का स्वागत

भगवान कृष्ण, श्रीरामचंद्रजी, शंकराचार्य, व्यास, शंकर, बुद्ध, महावीर, ईसामसीह इत्यादि कई महापुरुष अपने स्थूल शरीर के त्याग के बाद अधिक व्यापक, विराट एवं प्रभावी रूप से कार्य करते नजर आते है । इनमें से कुछेक अपने जीवन-कार्य, सदुपदेश या साहित्य द्वारा व्यक्ति या समष्टि को प्रभावित करते हैं तो कुछेक अपने भक्तों, प्रसंशको व शरणागतों को प्रेरणा प्रदान करके, कभी कभी उनको दर्शन देकर या पथप्रदर्शन देकर उनके जीवन में परिवर्तन उपस्थित कर देते है । अजीब होती है उनकी करुणा और अमूल्य होता है उनका अनुग्रह ।

ऐसे प्रातःस्मरणीय महापुरुषो में शिरडी के संत श्री सांईबाबा का स्थान प्रथम पंक्ति में आता है । बाबा ने १९१८ में समाधि ली परंतु उनकी शक्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक कार्य करती गई, जिसका अनुभव अनेकों स्त्रीपुरुषों को हुआ और हो रहा है । स्थूल देहत्याग के बाद उनकी शक्ति अधिक सक्रिय रूप से कार्य कर रही है, इसका अनुभव मुझे भी हुआ ।

मेरे हिमालय-निवास दरम्यान सांईबाबा ने अपनी अहेतुकी कृपा से मुझे दर्शन दिये । तत्पश्चात उन्होंने अनेकों बार विविध रूप से दर्शन देकर मेरी सहायता की जिससे मैं उनकी ओर आकर्षित हुआ । मैंने उनके समाधिस्थान की प्रत्यक्ष मुलाकात लेनी चाहि और तदनुसार चार-पाँच बार मुलाकात भी ली । तकरीबन पाँच दफा शिरडी की मुलाकात लेने के बाद मेरे मन में एक खयाल आया कि मैं सांईबाबा की सूचना या इच्छा से हर बार शिरडी जाता हूँ पर वे मेरा स्वागत कभी नहीं करते । वे तो शांति व स्थिरता से अपनी जगह पर बैठे ही रहते हैं । क्या उन्हें स्वागत नहीं करना चाहिए ? हाँलाकि हम अपने सत्कार की इच्छा से शिरडी नहीं जाते, ऐसे जाना भी नहीं चाहिए, फिर भी शिरडी में हर बार हमें उतारे की व्यवस्था करनी पडे, यह क्या ठीक है ?

हमारे शिरडी प्रवेशते ही वे किसी भी रुप में आकर हमारे ठहरने का प्रबंध करे तो कितना अच्छा । हम जब इतने प्रेम से प्रेरित हो वहाँ जाते हैं तो उन्हें भी अपना धर्म याद कर कुछ करना चाहिए । ऐसी ऐसी बातें करते हुए हम बंबई से शिरडी पहुँचे । वह दिन गुरुवार (बृहस्पतिबार) का था अतएव वहाँ दर्शनार्थियों की बडी भीड थी । खचाखच भरी हुई मोटर-कारें लोगों को लाती थी । जहाँ देखो वहाँ जनसमुदाय नजर आता था । ऐसे में रहने की जगह ढूँढना बडा मुश्किल था लेकिन सांईबाबा की इच्छा अलग ही थी ।

जैसे ही हम मोटर से उतरकर कार्यालय के मकान की ओर गये, जनसमुदाय में से एक किसान-सा आदमी हमारे पास आया और मुझे पूछने लगा, 'आप यहाँ रहना चाहते है ?'

मैंने कहा, 'हाँ, रहना है ।'

'आपको रहने की जगह चाहिए ? शिरडी के सुंदर स्थान में मैं आपका स्वागत करता हूँ । आज भीड ज्यादा है इसलिए आपको जगह मिलना मुश्किल है, लेकिन मेरे पास अच्छी जगह है, एक अलग कमरा है ।'

'तुम्हारा मकान कहाँ है ?'

'समाधि मंदिर के करीब ।'

'मगर इतने सारे लोगों की भीड में किसी और के पास जाने के बजाय तुम यहाँ कैसे चले आये ?'

'मुझे बाबा ने प्रेरणा की है ।'

'प्रेरणा ?'

'हाँ, आपको देख मुझे निमंत्रण देने का मन हुआ । उन्होंने ही मुझे आपके पास भेजा है ।'

मुझे आश्चर्य और आनंद हुआ । मेरे कहने से मेरे साथ आयें सज्जन उस आदमी का मकान देख आए । उन्होंने ठिकाना अच्छा है ऐसा कहा तब हम सब उनके यहाँ गये ।

मकान समाधिमंदिर के नजदीक और नितांत स्वच्छ व सुंदर था । हमें बहुत पसंद आया । मेरे साथ आनेवाले भाईयों की श्रद्धाभक्ति इस घटना से बहुत ही बढ गई ।

उन भाईओं ने कहा, 'शिरडी के संतपुरुष ने हमारा स्वागत किया और वह भी ऐन मौके पर, जब उसकी बडी आवश्यकता थी उस वक्त ।'

मैंने कहा, 'बिल्कुल सच है । उन शक्तिशाली समर्थ संतपुरुष ने इस तरह अपना प्रेम व अनुग्रह दिखाया ।'

मैले वस्त्रधारी, पगडीधारी, साँवरे शरीरवाले उस किसान-से यजमान को मैं आज तक नहीं भूल सका और कभी भी भूल नहीं सकूँगा ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२३. सांईबाबा की शक्ति का परिचय

शिरडी के समर्थ संतशिरोमणी श्री सांईबाबा को कौन नहीं पहचानता ? ब्रह्मलीन बाबा की अमोघ, असाधारण शक्ति का अनुभव अनेकों को हुआ है । सन १९१८ में समाधि लेने के बाद आज पर्यं तक अनेकों को प्रेरणा प्रदान कर उनके जीवनपथ को उजागर किया है । मुझे उनकी ऐसी शक्ति का लाभ कई बार मिला है । इसका वर्णन मैंने कई बार किया है । यहाँ एक और घटना का उल्लेख करने का लोभ संवरण नहीं कर सकता ।

बंबई से शिरडी जाने का रास्ता उस वक्त इतना आसान नहीं था । आज तो स्पेशियल बस सर्वीस शुरु हुई है । उस समय तो बडी परेशानी होती थी । फिर भी बाबा की प्रेरणा से शिरडी यात्रा मैंने कई बार की ।

सात साल पहले एक बार मुझे शिरडी जाना हुआ तो मैंने समाधि स्थान में खडे होकर मेरे साथे आये हुए भाईबहन सुने इस तरह सांईबाबा को संबोधित करते हुए कहा, 'बाबा, आज तक तो आपकी प्रेरणा या सूचना के मुताबिक मैं यहाँ आया हूँ, किन्तु अब मुझे खयाल आता है कि इतना कष्ट उठाकर मुझे यहाँ क्यों आना चाहिए ? अन्य लोग तो किसी उम्मीद या जिज्ञासा के कारण आते हैं पर मुझे तो ऐसी कोई आवश्यकता नहीं । अब तो आप यहाँ आने की प्रेरणा करेंगे तो भी नहीं आऊँगा । अगर आप मुझे यहाँ बुलाना चाहते हैं तो आपको मेरे लिए मोटरकार की व्यवस्था करनी पडेगी । तभी मैं आऊँगा । आपके लिए कुछ भी नामुमकिन नहीं ।'

ऐसा कहकर सांईबाबा को वंदन करके हम वापस लौटे । इस घटना को हुए तीन साल बीत गये । इस बीच शिरडी जाने की सूचना मिली लेकिन अब वैसे ही थोडे जा सकता हूँ ? बिना मोटरकार भेजे मैं कैसे जाऊँ, मेरी शर्त का क्या ?

बंबई के एक-दो परिचित सदगृहस्थों से अप्रत्यक्ष रूप से बातचीत की पर बंबई के बाहर मोटर भेजने के लिए वे तैयार नहीं हुए । मुझे विश्वास था की बाबा किसी के दिल में प्रेरणा करके निर्धारित कार्य पूरा कर देंगे । उस वक्त वालकेश्वर स्थित आरोग्य-भवन में मेरा सत्संग-प्रवचन चलता था । इसमें एक भावुक बहनजी भी आती थी । उनकी आर्थिक हालत अच्छी थी । प्रवचन के बाद एक बार उन्होंने कहा, 'आप कहीं बाहर घूमने नहीं जाते ?'

'क्यों ? मैं तो हररोज जाता हूँ ।' मैंने उत्तर दिया ।

'पैदल जाते हैं ?'

'हाँ, प्रायः पैदल ही जाता हूँ । कभीकभी बहुत दूर जाना हो तब टेक्सी कर लेता हूँ ।'

'मुझे भी सेवा का अवसर दिजीये न ! मेरी मोटर है । आपके कहने पर मेरा ड्राईवर आपको घूमने ले जायेगा ।'

'देखूँगा,' मैंने संक्षेप में कहा ।

बाद में भी दो-तीन बार बहनजी ने मोटर के लिए कहा । उनका आग्रह व प्रेम देखकर एक बार मैंने साफ-साफ बात की, 'मुझे मोटर की आवश्यकता है किन्तु बंबई में घूमने के लिए नहीं, शिरडी जाने के लिए ।'

'कितने दिनों के लिए ?'

'तीन-चार दिनों के लिए ।'

यह सुनकर बहनजी बोली, 'मोटर आपकी है । मैं घर जाके उनको पूछुंगी । वे ना नहीं कहेंगे ।'

'तुम पूछकर उत्तर दे देना ।'

बहनजी गईं । मुझे लगा कि सांईबाबा ने हमारी इच्छानुसार तैयारी करने की शुरुआत की है वरना साधारण परिचयवाली यह बहनजी इतने प्यार से मोटरकार के लिए क्यूँ कहेगी ?

परंतु तीन-चार दिन तक वह बहनजी न दिखाई दी । उनके निकट रहनेवाली एक बहनने कहा, 'वह तो बडी मुसीबत में फँस गई है ।' फिर उसने विस्तार से कहा : जब उन्होंने पतिदेव से मोटर देने के लिए कहा तो वे लालपीले हो गए और कहने लगे, 'साधुसंतो के लिए कार नहीं खरीदी है, समझी ? और हाँ, आज से तुझे सत्संग में भी नहीं जाना है ।'

मैं पूरी बात समझ गया । कुछ सज्जन कहने लगे, 'इससे तो बहेतर है कि रेलगाडी से जाए । रीझर्वेशन करवा लेंगे तो कोई तकलीफ नहीं होगी ।' लेकिन मेरे मन का समाधान नहीं हुआ ।

*

तीन-चार दिन बाद वह मोटरवाली बहनजी सत्संग में आने लगी लेकिन उन्होंने मोटर की बात नहीं छेडी । मुझे भी इस बारे में पूछना ठीक न लगा । मैंने सोचा कई बार मनुष्य की इच्छा या भावना होने पर भी प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण उसका आचरण नहीं हो पाता ।

दो-तीन दिन और गुजर गये । चौथे दिन सत्संग की समाप्ति के बाद बहनजी ने पूछा, 'आपको सचमुच शिरडी जाना है क्या ?'

'हाँ, लेकिन ऐसा क्यों पूछती हैं ?'

'आपको मोटर कब चाहिए ?' मैं थोडी देर उनकी ओर देखता रहा और बोला, 'जब मिले तब, इतवार को भी चलेगा, परंतु क्या तुम्हारी मोटर मिलना मुमकिन है ?'

'हाँ, पहले तो उन्हों ने गुस्से होकर साफ इन्कार किया था लेकिन आज न जाने क्या हुआ, उन्होंने मोटर देने की संमति दे दी । इतने में वे सज्जन भी आ पहुँचे । इतवार को शिरडी जाना तय होने पर मैंने पेट्रोल खर्च देने को कहा तब वे बोले, 'हम भला आप जैसे साधुपुरुष से पेट्रोल का खर्च लेंगे ? संतसेवा का लाभ ही सच्चा धन है । हाँ, ड्राईवर चाय का रसिया है, उसे चाय जरूर पिलाना !'

'इस बारे में आप निश्चिंत रहिये, पर आपको दो-तीन दिन तकलीफ होगी ।'

'कोई हर्ज नहीं । मैं इतवार को ग्यारह बजे ड्राईवर के साथ मोटर लेकर आ पहुँचूंगा ।'

*

इतवार के दिन हम मोटर में शिरडी जाने निकले तब उस सज्जन ने कहा, 'आराम से यात्रा कीजियेगा ।'

उस बहनजी की आँखे भर आई । उनके पतिदेव का मन-परिवर्तन करनेवाले और मेरा निर्धार सफल करनेवाले सांईबाबा ही थे । उनकी असाधारण अगम्य शक्ति का ही यह नतीजा था ।

शिरडी के समाधि मंदिर में सांईबाबा की प्रतिमा के सामने खडे होकर, दोनों हाथ जोडकर मैंने उनको धन्यवाद देते हुए कहा, 'अच्छा है आप मुझे मोटर में यहाँ लाये, फिर भी ऐसा अवश्य करना की प्रत्येक परिस्थिति में आपके प्रति मेरा प्रेमभाव बना रहे ।'

प्रतिमा सजीव-प्राणवान हुई । मानों मेरे शब्द सुनकर सांईबाबा मुस्कराने लगे !

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२४. महात्मा पुरुषों की अमोघ शक्ति

उतराखंड के पुनित प्रदेश में स्थित निसर्गरम्य स्थल – देवप्रयाग अत्यंत सुहावना है । हरद्वार-ऋषिकेश से बदरी-केदार की यात्रा के मार्ग में यह स्थल अवश्य आता है ।

उत्तुंग पर्वतमंडल की गोद में बसे उस स्थल में प्रवेशित होते ही प्रवासी का मन-मयूर नाच उठता है । अलकनंदा और भागीरथी के संगम-स्थल पर बसा देवप्रयाग सचमुच 'यथा नामम् तथा गुणम्' के अनुसार देवताओं के प्रयाग के समान ही नजर आता है ।

आज से करीब तीस साल पहले वहाँ एक एकांतप्रिय महात्मा रहते थे । उनकी उम्र छोटी थी फिर भी देवप्रयाग के लोग उन्हें बडे आदर से देखते थे । वे गाँव से दूर वन में किसी जमीनदार के मकान में रहते थे । उनका ज्यादातर वक्त साधना में-आत्मानुसंधान में ही बीतता था । लोगों के साथ संबंध नहींवत् था ।

एक बार उस मकान के मालिक जमीनदार ने उनसे कहा, 'मेरे जीवन में सब प्रकार का सुख है पर एक का अभाव है । मुझे पुत्र-सुख नहीं है अतएव मेरी पत्नी का मन उद्विग्न रहता है । इससे घर में भी शांति नहीं रहती ।'

'पुत्र होने से शांति मिल ही जाएगी ऐसा क्यों मानते हो ?' महात्माने पूछा, 'संतान से किसीको शांति मिली है ? तुम तो पंडित हो, विचारशील हो, इसलिए आसानी से समझ सकते हो कि शांति कहीं बाहर से नहीं पर भीतर से ही उपलब्ध होती है ।'

'फिर भी मुझे पुत्र चाहिए और मुझे विश्वास है कि जब तक पुत्र-प्राप्ति नहीं होगी, मेरा चित्त अशांत ही रहेगा ।' पंडित-जमीनदार बोले.

'तुम्हें दो पुत्रीयाँ है उन्हें पुत्र-समान मान लो तो ?'

'नहीं मान सकता इसलिये तो मन अप्रसन्न रहता है ।' कुछ देर खामोश रहने के बाद जमीनदार आगे बोले, 'मुझे अपनी इस औरत से नहीं मिलेगा ऐसा मेरे ग्रहयोग कहते हैं । मैं ज्योतिषशास्त्र में प्रवीण हूँ । कुंडली के अभ्यास और गिनती से मैंने जान लिया है कि यह स्त्री मुझे पुत्र नहीं दे सकती । दूसरी पत्नी करनी पडेगी ।'

जमीनदार की बात सुन महात्माजी ने कहा, 'दूसरी पत्नी ? तुम जैसे पंडित और सयाने पुरुष एक पर दूसरी स्त्री करे यह अच्छा है क्या ? इससे तुम्हारी इस पत्नी को कितना दुःख होगा जरा सोचो तो । सामान्य लोगों पर इसका कैसा प्रभाव पडेगा ? आपका बर्ताव लोगों की नजरों में भी आदर्श व अनुकरणीय होना चाहिए ।'

महात्मा के इन शब्दों का जमीनदार पर कोई असर न हुआ । उन्होंने साफ-साफ कह दिया, 'मैंने दूसरी पत्नी करना तय कर लिया है और आपके आशीर्वाद के लिये ही यहाँ आया हूँ ।'

'ऐसे अनुचित कार्य के लिये मेरा आशीर्वाद ? तुम दूसरी शादी करके पहली स्त्री के जीवन को दुःखी बना दोगे और अगर दूसरी को भी पुत्र नहीं हुआ तो क्या करोगे ?'

'दूसरी पत्नी को अवश्य पुत्र होगा ।'

'तुमने कैसे जाना ?'

'मेरे गुरु का भी यही अभिप्राय है । वे ज्योतिष के अभ्यासी और अनुभवी है । गढवाल में ही नहीं, पूरे भारत में उनके जैसे ज्योतिषाचार्य का मिलना मुश्किल है । पीछले दो दिनों से वे मेरे यहाँ पधारे हैं । मुझे उनमें बडी श्रद्धा-भक्ति हैं और उनके आशीर्वाद भी मुझे उपलब्ध हो चुके है ।'

'तब तो तुम दूसरी शादी कर ही दोगे ?'

'अवश्य, मेरा यही निर्धार है ।' जमीनदार बोले ।

'मुझे तुम्हारा यह विचार बिल्कुल पसंद नहीं है ।' महात्मा ने दृढता से कहा ।

'परंतु मेरे गुरु को पसंद है इसलिए मैं निश्चिंत हूँ ।'

'मेरी अंतरात्मा कहती है कि तुम्हारे गुरुजी का कथन बराबर नहीं है । मेरी मानो तो अब भी निर्णय बदल दो और दूसरी शादी करना छोड दो । तुम्हें पुत्र-सुख मिलेगा पर वह नयी पत्नी से नहीं, पुरानी से ही मिलेगा । ईश्वर की अनंत कृपा से मैं यह जान सका हूँ ।'

'आपकी बात पर मुझे विश्वास नहीं होता ।' जमीनदार ने कहा ।

'तो फिर देख लेना । मेरी भविष्यवाणी सच्ची साबित होगी ।' इतना बोलकर महात्माजी अपने काम में लग गये और पंडितजी अपने घर वापस लौटे ।

तदनन्तर पंद्रह दिनों में ही उस जमीनदार ने पुनर्विवाह किया । अलबत्ता, धूमधाम से नहीं, गुप्त रूप से । उनकी पहली पत्नी के चहेरे का रंग उड गया । वह आँसू बहाती रह गई ।

इस बात को हुए लंबा समय हुआ । नयी पत्नी को एक पुत्री हुई पर चल बसी । दूसरी पुत्री आई । पंडितजी पुत्र की आशा में दिन गुजारने लगे । शादी के करीब तीन साल बाद पंडितजी एक बार उन महात्मा के साथ देवप्रयाग के निकट स्थित चंद्रवदनी देवी के एकांत स्थान पर थोडे दिन रहने और एक शेठजी का अनुष्ठान करने आये । अनुष्ठान पुरा करके दो-तीन पंडितो के साथ जब वे पर्वत से नीचे उतर रहे थे तब एक सज्जन मिले, जिन्होंने कहा, 'मैं आपको खुश-खबर देने आया हूँ । आपके घर आज पुत्रजन्म हुआ है ।'

यह शुभ समाचार सुन पंडित के आनंद की सीमा न रही । लंबे समय की उम्मीद बर आई । महात्मा ने पूछा, 'पुत्र किसकी गोद में हुआ ? नयी पत्नी या पुरानी ?'

'पुरानी स्त्री को,' बधाई लानेवाले सज्जन ने उत्तर दिया ।

'ईश्वर ने भला किया, उस स्त्री को न्याय मिला । अब वह शांति से, चैन से जी सकेगी ।'

यह सुनकर पंडितजी महात्मा के पैरों में पड गए ।

कुछ महिने बीतने पर नयी पत्नी क्षयरोग की बिमारी में चल बसी और कुछ ही दिनों में पुरानी पत्नी भी दिवंगत हुई । उसकी याद दिलानेवाला पुत्र आज बडा हो गया है और हाईस्कूल में पढता है । उन महात्मा पुरुष ने भी देवप्रयाग छोड दिया है । हाँ, इस घटना के साक्षी स्वरूप पंडितजी व उनके साथी आज भी देवप्रयाग में विद्यमान है ।

महात्मा पुरुषों के अमोघ वाणी का यह प्रेरणादायी प्रसंग है । जहाँ ज्योतिष का प्रकाश नहीं पहोंचता वहाँ अवधूत योगीओं की आत्मज्योति पहूँच जाती है । उनकी अमोघ शक्ति सब शक्तिओं से बढकर होती है, इसकी प्रतीति भी इस प्रसंग से होती है । ऐसे महात्मा पुरुषों की असीम शक्ति को मेरे बार-बार वंदन !

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२५. विवेकानंद ने देखा प्याला

वेदांतकेसरी स्वामी विवेकानंद महान ज्ञानी, कर्मयोगी एवं मानवताप्रेमी तो थे ही, उनके दिल में देश के लिए और दुनिया के छोटे-बडे पीडित व बंधनग्रस्त जीवात्माओं के लिए हमदर्दी थी, यह भी सच है । किन्तु उनके जीवन का एक ओर भी पहलू था और वह था उनका अदभुत आत्मबल । इसके मूल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस की कृपा व अपनी गहन साधना थी, जिसके बारे में बहुत कम लोगों को पता है।

उनके इस अदभुत आत्मबल का अथवा उनकी असाधारण शक्ति का परिचय प्रदान करनेवाला प्रसंग यहाँ लिख रहा हूँ, जिससे उन महापुरुष के प्रति हमें आदर पैदा होगा । इसके अतिरिक्त विवेकानंद के पुनर्मुल्यांकन की नयी दृष्टि उपलब्ध होगी ।

यह घटना किसी मामूली आदमीने नहीं लिखी, परंतु परमहंस स्वामी योगानंद ने लिखी है, जो विवेकानंद के अनन्तर लंबे समय के बाद अमरिका गये थे और दीर्घ समय तक वहाँ रहे थे । इसका जीक्र उन्होंने अपनी आत्मकथा 'एक योगी की आत्मकथा' के 'मैं पश्चिम में वापस लौटता हूँ' प्रकरण अंतर्गत किया है ।

भारत की मुलाकात के बाद जब योगानंदजी अमरिका वापस लौटे तब वहाँ के भक्तों या शिष्यों के लिए कुछ सौगातें लेतें गये ।

उन्होंने मिस्टर डिकीन्स को चांदी का एक प्याला अर्पण किया । उसे देख डिकीन्स ने आनंदोदगार निकाले, 'आह, इस चांदी के प्याले की मैं पिछले तेंतालीस साल से प्रतीक्षा कर रहा था ।'

योगानंदजी ने पूछा, 'कैसे ?'

उन्होंने उत्तर दिया, 'बात बहुत लंबी है और आज पर्यंत दिल में छुपा रक्खी थी । जब मेरी उम्र पाँच साल की थी तब मेरे बडे भाई ने मुझे खेल ही खेल में पंद्रह फीट पानी में धक्का दिया । मैं जब डूबने की तैयारी में था तब मुझे विविध रंगयुक्त प्रकाश दिखाई दिया और उसके बीच शांत प्रसन्न नेत्रोंयुक्त आकृति का दर्शन हुआ । फिर तो मेरे भाई व अन्य दोस्तों की सहायता से मैं बच गया ।'

'तदनन्तर जब मेरी उम्र सत्रह साल की हुई तब मैं मेरी माता के साथ शिकागो गया – सन १८९३ में । वहाँ सर्वधर्म परिषद चलती थी । एक दिन माता के साथ मुख्य रास्ते से गुजरते हुए मैंने दूसरी बार वह प्रकाश का दर्शन किया । थोडी दूर एक मनुष्य देखा जिसको मैंने बरसों पहले सपने में देखा था । वे सभाखंड की ओर चले और अंदर प्रवेशित हुए ।'

मैंने अपनी माता से कहा, 'माँ, पानी में डूबते वक्त इसी महापुरुष ने मुझे दर्शन दिया था ।'

हम भी सभाखंड में प्रवेशित हुए । वे मंच पर बैठे थे । हमने जाना की वे स्वामी विवेकानंद थे । उनके प्रेरणादायी प्रवचन के बाद हम उनसे मिलने गये । लंबे अरसे से मानों मुझे पहचानते हों इस तरह मेरी ओर देखकर हँस पडे । मैं उन्हें गुरु बनाना चाहता था पर इस विचार को भाँपकर वे कहने लगे, 'ना, मैं तेरा गुरु नहीं हूँ । तेरे गुरु को आने में अभी देर लगेगी । वे आएँगें और तुझे चांदी का प्याला देंगे ।'

कुछ देर रुककर फिर से कहा, 'वे तुझ पर इससे भी ज्यादा कृपा बरसायेंगे ।'

तत्पश्चात हमने शिकागो छोडा और महान स्वामी विवेकानंद की फिर मुलाकात न हो सकी । बरसों बीत गए, कोई गुरु न मिले तब इस्वी सन १९२५ में एक रात को मैंने अत्यंत उत्कट भाव से गुरु के लिए प्रार्थना की । कुछ घंटो के बाद, संगीत के सुमधुर स्वरों के साथ किसीने मुझे नींद से जगाया ।

दूसरे ही दिन जीवन में पहली बार मैंने यहाँ लोस एन्जेलीस में आपका प्रवचन सुना और मुझे विश्वास हो गया कि मेरी प्रार्थना का स्वीकार हुआ है । पिछले ग्यारह बरसों से मैं आपका शिष्य बना हूँ । चांदी के प्याले की बात याद करके मुझे बार-बार अचरज होता । कभी-कभी ऐसा भी लगता कि विवेकानंद के शब्दों का केवल भावार्थ ही ग्रहण करना है, परंतु क्रिसमस की रात को जब आपने चांदी का प्याला दिया तब मेरे जीवन में तीसरी बार मुझे प्रबल प्रकाश का दर्शन हुआ । दूसरे ही क्षण मेरी नजर चांदी के प्याले पर पडी जिसको स्वामी विवेकानंद की दृष्टि ४३ साल पहले देख चुकी थी । विवेकानंद के शब्दों का यथार्थ रहस्य मुझे तभी अवगत हुआ ।'

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२६. ईश्वर की कृपा का दर्शन

'पर्वतों की रानी' के रोचक नाम से पुकारी जानेवाली मसूरी नगरी का प्रवास जिन्होंने किया होगा उन्होंने वहाँ की चित्रशाला का अवश्य दर्शन किया होगा । उसके आचार्य श्री रुपकिशोर कपूर ने देशनेताओं, देवी-देवताओं, विविध घटनाओं एवं प्रकृति के चित्रों का निर्माण किया है, जिनकी कलात्मकता देख बहुत से लोगों ने उन्हें सराहा होगा । यह रम्य चित्रशाला केवल मसूरी की ही नहीं परंतु समुचे देश की अनमोल सांस्कृतिक निधि है । इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं ।

गुरुजी के प्यारे नाम से मशहूर श्री रुपकिशोर कपूर की उस सुंदर चित्रशाला में गत अप्रैल के अंतिम सप्ताह में सहसा आग लग गई ।

उस मकान में चित्रशाला के अलावा दूसरी चार दुकानें भी थी । उसमें रहनेवाले लोग वहाँ रात को सोने गए । गुरुजी भी इस हेतु गए । इसी समय मकान के उपरी हिस्से में लगी आग पवन की सहायता से चारों ओर फैलने लगी ।

गुरुजी को किसीने जोर-जोर से चिल्लाकर जगाया और आग के समाचार दिये । गुरुजी अन्य पडोंशीओं की तरह जगे और बाहर निकले । आग तो इतनी तेजी से फैल रही थी कि उससे किसी भी चीज को निकालना असंभव था ।

आग बडी तेजी से बढ रही थी । थोडा ज्यादा वक्त हो गया होता तो गुरुजी भी न बचते । लडखडाते हुए गुरुजी मकान के सामने के वृक्ष के नीचे बैठ गये । कुछ ही समय में आग ने अपनी लपटों से सारे मकान को भस्मीभूत बना दिया । यह घटना अत्यधिक भीषण व करुण थी ।

इसकी जानकारी मिलने पर मसूरी का जनसमुदाय इकट्ठा हो गया । वे गुरुजी को दिलासा देने लगे । तब गुरुजी ने कहा, 'मुझे तो ईश्वर की ऐसी लीला का दर्शन करने में मझा आता है ।'

यह सुनकर लोगों ने समजा की गुरुजी पागल हो गये हैं । मसूरी में आग बुझाने के पर्याप्त साधनों का अभाव था और आग भी बडी भयानक थी । अतएव देढ या दो घंटो में समग्र मकान स्वाहा हो गया ।

एक पंजाबी परिवार गुरुजी को अपने घर ले गया । दूसरे ही दिन वे देहरादून गये । उनका मन अब मसूरी से उचट गया । लेकिन ईश्वर की योजना कुछ भिन्न ही थी । देहरादून में रातभर नींद न आने से वे पुनः मसूरी लौटे । मसूरी में रहेने के लिए छोटा सा मकान उन्हें मिल गया ।

चित्रशाला के विनाश पर उनके असंख्य प्रेमीयों, प्रसंशकों एवं शुभकांक्षीयों ने दुःख प्रकट किया और उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त की पर आश्चर्य की बात तो यह थी कि इतने कष्टदायी प्रसंग से भी गुरुजी का मन अस्वस्थ न हुआ ।

उन्होंने सबसे कहा, 'आग की घटना से मुझे तनिक भी दुःख नहीं, इसमें मुझे ईश्वरकृपा के ही दर्शन होते हैं । पिछले कई महिनों से मुझे चित्रशाला के भविष्य की चिंता होती थी कि ईश्वर कोई हल उपस्थित करे तो अच्छा लेकिन ऐसा अजीब हल होगा इस बात की मुझे कल्पना भी न थी । लेकिन जब समस्या का हल आ ही गया है तो बडबडाहट का कोई अर्थ नहीं है । उसका स्वीकार करना ही अच्छा । सर्जन और विसर्जन तो सृष्टि का क्रम ही है । चित्रशाला को छोडकर मुझे जाना ही था, उसके बजाय वे मुझे छोड गई । जो हुआ वह अच्छा ही हुआ । मेरी शेष ममता भी चली गई । ईश्वर हमारे जीवन में

किस तरह और किस समय कल्याणकर सिद्ध होता है यह किसे मालूम ? मेरी जिन्दगी में इससे पहले जिसे कभी नहीं पाया वैसी गहरी शांति का अनुभव मुझे हो रहा है । ईश्वर ने मुझे मेरी प्रिय चीज से वंचित करके अत्यंत अनमोल वस्तु प्रदान की है । मैंने अनेक संतपुरुषों का समागम किया है । इसके फलस्वरूप मुझे इस विवेक की प्राप्ति हुई है ।'

सचमुच उनका यह विवेक सराहनीय था । महान संत भी कभी वस्तु के वियोग से दुःखित होकर मन की स्थिरता गवाँ देते हैं जब कि गुरुजी की दृष्टि या वृति सचमुच अभिनंदनीय थी । समजदार इन्सान भी समय आने पर गम करने बैठता है जब कि गुरुजी नितांत स्वस्थ थे । यह ईश्वर की कृपा नहीं तो और क्या ? सर्जन की तरह सर्वनाश में भी वे इश्वर-कृपा का ही दर्शन करते थे । ऐसी दृष्टि अगर सब में आ जाए तो जीवन में कितने दुःख कम हो जायें !

मसूरी में आज चित्रशाला तो नहीं है, परंतु उसके जनक - जीवन के सच्चे कलाकार – गुरुजी है और उनका समागम करने योग्य है ।

२७. कुंडलिनी का अनुभव

योगविद्या में दिलचस्पी लेनेवाले लोग केवल भारत में ही नहीं किन्तु विदेशों में भी मिलते है । इनमें से कुछ उच्च कोटि की जिज्ञासा से प्रेरित होकर भारत आते हैं तो कुछ उन्हीं देशों में रहकर साधना-पथ पर आगे बढते हैं । अपनी रुचि व प्रकृति के अनुसार उन्हें पथप्रदर्शक की प्राप्ति भी होती है । परंतु कोई ऐसा भी जिज्ञासु साधक होता हैं जिसे पथप्रदर्शक नहीं मिलता और वह अकेला ही इसमें प्रयोग करता रहता है ।

अमेरिका के ऐसे ही प्रयोगवीर को भारत के योगदर्शन के अध्ययन के पश्चात प्रश्न पैदा हुआ कि योग-ग्रंथो में मूलाधार चक्र में स्थित सर्पाकार कुंडलिनी शक्ति का वर्णन आता है और विभिन्न चक्रों का उल्लेख मिलता है तो वह कुंडलिनी शक्ति और चक्र शरीर में निहित हैं या उनका गलत वर्णन किया गया है ? अगर हैं तो उनका दर्शन शरीर के भीतर होना ही चाहिए । नहीं तो वह वर्णन केवल मनमानी रीति से, बिना किसी सबूत के किया गया मानना चाहिए ।

बस फिर क्या था ? प्रयोगवीर कोई साधारण मनुष्य नहीं, पर डोक्टर था । उन्होंने अपनी जिज्ञासावृति को तुष्ट करने का दृढ संकल्प किया । उस संकल्प की पूर्ति के लिए उन्होंने विचित्र प्रकार की प्रवृति शुरु की । आपको शायद इसकी कल्पना भी न हों ऐसी प्रवृति वे करने लगे । वे मृत शरीर को प्राप्त कर चीरने लगे ।

समग्र शरीर को चीर डाला पर जो प्राप्तव्य था वह न मिला । न तो चक्र दिखाई दिया, न कुंडलिनी के दर्शन हुए । फिर भी वे हताश न हुए । वैसी ही अदम्य जिज्ञासा व उत्साह से उन्होंने कई मुर्दो कों चीर दिया ।

इतने प्रयत्नों के बावजूद भी जब चक्र या कुण्डलिनी का अनुभव न हुआ तब उनकी धीरज न रही । योग के ग्रंथो से उनका विश्वास उठ गया और वे जहाँ तहाँ और हर किसी को कहते फिरते की भारतीय योगग्रंथ जूठे हैं । उनमें मिथ्या वर्णनों की भरमार है ।

परंतु जिसके दिल में सत्य के साक्षात्कार की सच्ची लगन लगी हो उसे ईश्वर एक या दूसरे रूप से शीघ्र या देरी से सहायता अवश्य करता है । यह एक अनिवार्य सत्य है ।

उन्हीं दिनों भारत के एक प्रतिभासंपन्न अनुभवी व महान योगी स्वामी योगानंद अमरिका के दौरे पर आए । इस दौरान वे अमरिकन डोक्टर से योगानंदजी की भेंट हुई । डोक्टर ने बात ही बात में अपनी योगमार्ग की अश्रद्धा व्यक्त की । चक्र व कुंडलिनी यह सब गलत है - ऐसा कहकर अपने प्रयोगों का इतिहास कहा ।

योगानंदजी ने कहा, 'योग के ग्रंथो की बात गलत नहीं है पर आपकी प्रयोग करने की पद्धति गलत है इसलिए आपको निराशा हुई है । यदि उचित पथप्रदर्शन उपलब्ध कर सच्ची दिशा में यत्न करोगे तो ग्रंथो में कहे गये अनुभवों का तुम्हें अहेसास अवश्य होगा । कुंडलिनी, चक्र, आत्मा – ये सब सूक्ष्म पदार्थ है अतएव हजारों मुर्दों को चीरने पर भी इन्हें नहीं देख सकोगे । उनकी अनुभूति के लिए तो भीतरी साधना – अंतरंग साधना का आधार लेना पडेगा ।'

डोक्टर की इच्छानुसार योगानंदजी ने उन्हें योगदीक्षा दी और साधना का अभ्यासक्रम दिखाया । इसी साधना के फलस्वरूप दीर्घ समय के बाद उन्हें चक्र व कुंडलिनी का अनुभव हुआ । तब उन्हें पता

चला कि योग की ये सब बातें सच है । फिर तो आगे चलकर उन्होंने अपनी निजी अनुभूति के आधार पर कुंडलिनी विषय पर 'धी सर्पन्ट पावर' नामक किताब लिखी ।

योग या साधना की शास्त्रीय बातों को बिना किसी वैयक्तिक अनुभूति या अनुभूति के लिए आवश्यक अखंड अभ्यास के बिना मिथ्या मानने और मनानेवाले लोग इस घटना से कुछ सबक लेंगे क्या ? उनके लिए और दूसरे सबके लिए यह घटना बोधपाठ के समान है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

२८. दया का दर्शन

अनुभवी महापुरुष, संत-भक्त या विद्वान कहते हैं कि 'ईश्वर जो करता है वह मगंल के लिए ही करता है' । ऐसा विश्वास यदि साकार रूप में मनुष्य के मन में हो जाय तो इससे उसका कल्याण होता है । जीवन में कई बार उस विश्वास की कसौटी करनेवाले प्रसंग उपस्थित होते हैं और अक्सर प्रतिकूल परिस्थिति में तो अधिक कसौटी होती है । ऐसे समय ईश्वर की मंगलमय ईच्छा एवं योजना में जिसको विश्वास होता है वह विश्वास को सदैव बनाये रखता है । ऐसा विश्वास यदि हमारे जीवन में पैदा हो जाय और दृढ हो जाय तो कितना लाभ हो जाय ? चिंता खत्म हो जाय, वेदना का शमन हो जाय और प्रत्येक परिस्थिति में मन शांत व स्वस्थ रहें ।

यह घटना प्रायः ई. सन १९५६ की है । उस वक्त मैं ऋषिकेश के भरत मंदिर की धर्मशाला में रहता था । एक सज्जन मुझे अपने घर आनेका निमंत्रण दे गये । उनका घर देहरादून शहर के निकट के गाँव कोलागढ में था । मैंने उनके निमंत्रण का सहर्ष स्वीकार किया । तब वे खुश होकर बोले, 'आपके आने से मेरा घर पावन हो जाएगा, इतना ही नहीं बल्कि गाँव के लोगों को भी उसका लाभ मिलेगा । हमारा गाँव बहुत ही शांत व सुंदर है । कुछ लोग बहुत ही धर्मप्रेमी व संस्कारी है । आपके आगमन से वे भी लाभान्वित होंगे ।'

उनके साथ बातचीत करके मैंने वहाँ जाने का दिवस तय किया । वे हमें लेने सुबह में जल्दी आयें और हम ११-३० की बस से उनके साथ उनके गाँव जाए – ऐसा निश्चित किया ।

निर्धारीत दिन को मैंने सुबह में उनकी प्रतिक्षा की । सब तैयारियाँ कर ली थी परंतु ग्यारह बजने पर भी वे न आये तो मुझे आश्चर्य हुआ । बारह बज गये, एक बजा फिर भी न आये तो मैं उलझन में पड गया कि क्या करूँ ? मैंने सोचा, वे किसी कारण मुझे लेने न आ सके तो क्या हुआ, तय हुआ था इसलिए मुझे वहाँ जाना ही चाहिए । उनका घर मैंने नहीं देखा था लेकिन मेरे पास उनका पता हैं, तो मैं ढूँढ निकालूंगा ।

करीब तीन बजे जानेवाली बस में मैं ऋषिकेश से देहरादून जाने निकला । रास्ते में सोंग नामक नदी आई । वहाँ हमारी बस थोडी देर रुकी । नदी पर पुल न होने से बस को नदी से ही गुजरना पडता । वर्षाऋतु में बस-व्यवहार बंद रहता । ये तो जाडे की ऋतु थी । नदी में जल बहुत कम होना चाहिए ।

देखा तो पानी में ऋषिकेश से देहरादून जानेवाली कोई बस फँस गई थी । उनके पैसेन्जर बाहर इकट्ठे हुए थे । बस को बाहर निकालने में नाकामियाब हुए थे । जाँच करने पर पता चला कि वह बस ११-३० वाली वही बस थी जिसमें हमने जाने की योजना बनाई थी । योजना सफल नहीं हुई, सो अच्छा ही हुआ । वे सज्जन न आए वह सहेतुक अथवा अच्छा ही हुआ था ऐसा लगा । अगर वो आए होते तो हम उसी बस में सफर करते और उसकी दुर्दशा तो मैं देख ही रहा हूँ । उस दुर्दशा से मुझे बचाने के लिए ही सर्वज्ञ परमात्मा ने उस सज्जन को मेरे पास न भेजा । उस घटना में मुझे ईश्वर की दया का ही दर्शन हुआ । शायद मैं उस बस में बैठा होता तो बस नहीं भी फँसती, ऐसा भी हो सकता था परंतु मुझे तो मेरे सामने जो वास्तविकता थी उसका ही विचार करना था ।

देहरादून पहुँचकर मैं टांगे में बैठकर लगभग दो मील का फाँसला काटकर कोलागढ उस सज्जन के वहाँ पहूँचा । मुझे देखकर उन्हें अचरज हुआ, थोडा संकोच भी हुआ । उन्होंने कहा, 'आजके दिन का तो मुझे ख्याल ही न रहा, माफ करना ।'

'कोई हर्ज नहीं, आपका विस्मरण मेरे लिये लाभकारक सिद्ध हुआ है ।' मैंने उत्तर दिया ।

'कैसे ?'

मैंने रास्ते की सब घटनाएँ कहकर सुनाई । वे बोले ईश्वर जो करता है वह कल्याण के लिए, फिर भी मैं आपको लेने न आ सका इसका मुझे अफसोस है ।'

'ईश्वर की हर योजना या लीला सहेतुक होती है, मंगलमय होती है । हमें चाहिए की हम उसे इसी तरह देखने की दृष्टि हासिल करें ।'

अगर हम सचमुच ऐसी आदत डालें तो ईश्वरकृपा का दर्शन हमारी रोजबरोज की जिन्दगी में अवश्य होगा ।

२९. सच्ची सेवाभावना

भारत में दीनदुःखीयों, विद्यार्थीयों, विधवाओं एवं साधुसंतो की बरसों से विभिन्न रूप से सेवा करनेवाली संस्था बाबा काली कमलीवाले की संस्था का नाम शायद ही किसीने न सुना हो । संस्थान की कीर्ति-सौरभ उसकी लोकोपयोगी प्रवृत्ति के लिए देश के विभिन्न भागों में और विशेषतः उत्तर प्रदेश में फैली हुई हैं ।

इस संस्था के संस्थापक महात्मा बाबा काली कमलीवाले एक उच्च कोटि के ज्ञानी, त्यागी, संयमी एवं सेवापरायण संतपुरुष थे । इसका बीज उनके जैसे सुपात्र पुरुष द्वारा डाला जाने के कारण ही उसका इतना विकास हुआ, वह सुदृढ बनकर एक विशाल वटवृक्ष के समान पल्लवित हुई है ।

उनका मूल नाम स्वामी विशुद्धानंद था । किन्तु वे काली कमली ओढते थे अतएव बाबा काली कमलीवाले के नाम से विख्यात हुए । लक्ष्मी मानों उनकी दासी थी । बडे बडे धनिक भी उनकी सेवा करने तत्पर रहते थे फिर भी वे अत्यंत सादगी से रहते थे । वह संस्थान को जनहितार्थ मानते और उसका उपयोग अपने सुखोपभोग के लिए नहीं परंतु लोकसेवा के लिए करते थे ।

वे स्वाश्रयी जीवन में मानते थे और दूसरे लोग भी वही करे ऐसा चाहते थे । उनकी आवश्यकताएँ अत्यल्प थी । अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये दूसरों पर शायद ही आधार रखते या कम से कम आधार रखते । वे जब तक जिये तब तक स्वयं गंगा से पानी के घडे भरकर लाते रहे । यह बात उनके स्वाश्रयी जीवन का परिचय देती है । यदि वे चाहते तो इस काम के लिए संस्थान के या बाहर के कई लोग मिल जाते पर वे अपने हाथों ही यह कार्य करते थे ।

एक बार जब वे गंगा तट से पानी का घडा भर आते थे कि रास्ते में एक सेवक ने उसे लेने की नाकाम कोशिश की । सेवक ने कहा, 'हमारे होते हुए आप इस तरह घडा उठाए यह क्या अच्छा लगता है ?'

बाबा ने उत्तर दिया, 'इसमें क्या बूरा है ? मुझे स्वयं इतनी सेवा तो करनी ही चाहिए ।'

'परंतु हमारे होते हुए आपको ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है । आप तो संस्थान की बहुत सारी सेवा करते ही हैं ।'

तब बाबा काली कमलीवाले ने कहा, 'देखो भाई, सेवा की कोई सीमा नहीं होती, कोई गिनती नहीं होती । जीवन की अंतिम साँस तक हमें अपने जीवन का उपयोग दूसरों की सेवा के लिए करना चाहिए । सेवा में कोई छोटा नहीं, कोई बडा नहीं । सब तरह की सेवा काम की है और इससे मनुष्य को लाभ होता है और सेवा करनेवालों को भी इससे संतुष्टि मिलती है । इस संस्थान में रहकर मैं भी यथाशक्ति शरीरश्रम करूँ यह अत्यावश्यक है । इससे दूसरों को प्रेरणा की प्राप्ति होगी । ईश्वरेच्छा से माली बनकर जो सेवा का बीज मैंने बोया है, उस पर थोडा पानी डालता जाऊँ, यह उचित ही है ।'

हमारे नेता, संस्थापक, महंत और संस्थाध्यक्ष सेवा की यह भावना हासिल करे तो समाज को – राष्ट्र को कितना लाभ होगा ?

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३०. प्रीतमदास का प्रताप

गुजरात के चरोतर प्रदेश के संदेसर गाँव में रहनेवाले भक्तकवि प्रीतमदास प्रज्ञाचक्षु थे । वे प्रज्ञाचक्षु केवल कहने के लिए नहीं परंतु शब्द के सच्चे अर्थ में थे । उनके बाह्य स्थूल चक्षु जन्म से ही बन्द थे परंतु अंतर-चक्षु खुले हुए थे । ईश्वर की परमकृपा से उन्हें दिव्यदृष्टि की प्राप्ति हुई थी । उन्हें ऐसी प्रज्ञा प्राप्त थी जिसे योगदर्शन में ऋतंभरा प्रज्ञा कहते हैं और जो ईश्वरानुग्रह-प्राप्त पुरुषों को ही मिलती है ।

फिर भी वे शब्दों के रुढ अर्थ में योगी नहीं थे परंतु भक्त थे । भक्ति के द्वारा उनको ईश्वर का अनुग्रह मिला था, ईश्वरदर्शन हुए थे । उन पर ईश्वर की पूर्ण कृपा हुई थी यह कहा जा सकता है । उनके भावभक्ति से भरे पद गुजराती साहित्य में मशहूर है और अत्यंत आदरपात्र माने जाते है । फिर भी यह कहना उचित होगा कि वे पहले भक्त थे और बाद में कवि । भक्ति द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार करके वे सिद्धावस्था को पहुँचे थे ।

उनकी सिद्धावस्था के परिचायक अनेक प्रसंग उनके जीवन में हुए थे । उनमें से एक सुंदर प्रसंग पैश करता हूँ ।

कहते हैं एक बार प्रीतमदास सफर के लिए निकले थे । रास्ते में उनके रथ के सामने एक महंत का रथ आ रहा था । वे किसी बडे स्थान के महंत थे अतः उनके सारथी ने रथ एक और हटाने से इन्कार किया । प्रीतमदास के शिष्य भी उनसे क्या कम थे ? उन्होंने अपने गुरु को समर्थ मानते हुए महंत के रथ को रास्ता न दिया ।

दोनों रथ वहाँ रुक गये । सामने के रथवाले प्रीतमदास को गालियाँ देते हुए अपने गुरु की अतिरक्त प्रसंशा करने लगे ।

प्रीतमदास को लगा कि महंत व शिष्यमंडल के मन में बडा घमंड है, उसे दूर करना चाहिए । योगानुयोग से एक घटना घटी । दोनों के रथ के बीच एक मृत कबूतर गिरा था । प्रीतमदास ने यह देख कहा, 'अगर तुम्हारे महंत को अपनी शक्ति या योग्यता का घमंड है तो वे अपनी श्रेष्ठता का सबूत पेश करें । इस मरे हुए कबूतर को जिन्दा करें तो रास्ता देकर उन्हें पहले आगे जाने दूँगा ।'

महंत में ऐसी कोई शक्ति न थी अतएव वे कुछ न कर सके । आखिरकार प्रीतमदास ने कहा, 'मुझ में भी कोई विशेष शक्ति नहीं है पर मुझे पूरा विश्वास है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है और जो चाहें कर सकतें है ।'

ऐसा कहकर उन्होंने मृत पक्षी पर कपडा रखा और ईश्वर का स्मरण करके पानी छिडका । देखनेवाली बात यह हुई कि कबूतर जिन्दा हो गया और पंख फडफडाकर उड गया । यह देख सब दाँतो तले उँगली दबाने लगे और प्रीतमदास को प्रणाम किया ।

प्रीतमदास को किसी प्रकार का अभिमान न था । महंत के मिथ्याभिमान को मिटाने के लिए ही उन्होंने अपने प्रताप का प्रदर्शन किया था । वैयक्तिक शक्ति या सिद्धिप्रदर्शन करने की कोई लालसा उन्हें न थी । महंत का अहंकार चूरचूर हो गया । प्रीतमदास के रथ को उन्होंने आगे जाने दिया । इसके अतिरिक्त वे प्रीतमदास के प्रेमी व प्रसंशक बन गये ।

बडप्पन का अभिमान सबके लिए बुरा है । विशेषतः सतं या महंत को तो इससे दूर ही रहना चाहिए । इसके प्रभाव से बचना चाहिए । ऐसा उपदेश देकर प्रीतमदास चल दिये । गुजरात जिस पर नाज़ ले सके ऐसे वे सात्विक संत थे ।

३१. गुरु नहीं बन सकता

परमहंस योगानंद बंगाल में जन्मे थे । उन्होंने अपने जीवन के उत्तर काल में बरसों तक अमरिका में निवास किया था । उन्होंने समर्थ स्वामी विवेकानंद और रामतीर्थ की भाँति भारत के आध्यात्मिक गौरव का पश्चिम की प्रजा को परिचय देने का अनमोल काम किया । इसी लोकोपयोगी महान कार्य के लिए वे अमर हो गये । उनकी 'ओटोबायोग्राफी ओफ ए योगी' नामक आत्मकथा आज भी सुविख्यात है, जिसमें उन्होंने अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों का प्रकाशन किया है ।

प्रस्तुत कृति में योगानंदजी ने अपनी जवानी की एक घटना आलेखित की है जो विशेष उल्लेखनीय है । उस वक्त उन्होंने कोई गुरु नहीं किये थे ।

योग की आभ्यंतर साधना में गुरु की महिमा को वे जानते थे अतएव गुरु बनाने की इच्छा उन्हें थी पर गुरु किसे करें ? इसमें वे जल्दबाजी से काम लेना नहीं चाहते थे । अखियों की प्यास बुझाये और दिल की कली खिलाये ऐसे गुरु न मिले वहाँ तक इंतजार करना और खोज जारी रखना - यही रास्ता उन्हें योग्य लगा ।

इसका मतलब यह नहीं कि वे सत्संग ही नहीं करते थे । अनके महात्माओं से वे मिलते भी, लेकिन उनके अंतर को कोई आकर्षित न कर सका । वे साधना भी करते और संतो का समागम भी ।

इन दिनों उन्हें मास्टर महाशय का मिलाप हुआ । मास्टर महाशय ओर कोई नहीं पर रामकृष्ण परमहंस के जीवनी-लेखक श्री महेन्द्रनाथ गुप्त । उन्होंने श्री रामकृष्ण परमहंसदेव के जीवनप्रसंगो और संवादो को लेकर 'गोस्पेल ओफ रामकृष्ण' नामक ग्रंथ रचा था । इसी ग्रंथ से वे अमर हो गये । इसके द्वारा उन्होंने जनता की असाधारण सेवा की । अत्यंत अदभुत व अनुपम था उनका व्यक्तित्व । उसी व्यक्तित्व ने योगानंदजी के हृदय पर रंग डाला ।

वे श्री रामकृष्ण के संसारी शिष्य थे फिर भी अपनी साधना और जगदंबा की कृपा से सर्वोच्च्य अवस्था पर पहुँचे थे । जीवन के रहस्य को सुलझाकर, सनातन शांति प्राप्त कर, वे अपने जीवन को एक आदर्श, आप्तकाम या कृतार्थ मनुष्य की भाँति बिताते थे । उनका प्रबल प्रभाव जवान योगानंद पर कैसे नहीं पडता ?

योगानंद उनके चमत्कारिक व्यक्तित्व से आकृष्ट हो बार-बार उनके निकट जाने लगे । उनके उपदेशों का श्रवण कर शांति का अनुभव करने लगे । धीरे-धीरे उनके प्रति उनकी आदर-भावना बलवत्तर होती गई और उन्हें गुरु बनाने का संकल्प भी कर लिया ।

इसीसे प्रेरित होकर एक दिन पीले फूलों की माला लिए वे मास्टर महाशय के पास पहुँचे । मास्टर महाशय बडी शांति से अपने कमरे में बैठे थे । वहाँ पहुँचकर उन्होंने माला निकाली और बडी प्रसन्नता से पहनाने का प्रयत्न किया किन्तु मास्टर महाशय पीछे हट गये । उन्होंने माला का स्वीकार नहीं किया । यह देख योगानंदजी को दुःख होना बडा स्वाभाविक था । उनके दुःख को जानकर मास्टर महाशय बोले, 'तुम्हारे दुःख को मैं समज सकता हूँ मगर जिस संकल्प से तुम माला पहनाते हो वह उचित नहीं है । मैं तुम्हारा गुरु नहीं बन सकता ।'

'तो फिर मेरे गुरु कौन होंगे ?' योगानंदजी ने पूछा ।

'तुम्हें तुम्हारे गुरु थोडे ही दिनों में खुदबखुद मिल जाएँगे । वे तुम्हें पहचान जाएँगे और अपना परिचय देंगे । पूर्वसंबंध से वे तुम्हारे साथ सुसंबध्ध है । मैं तुम्हें उपदेश देकर मार्ग दिखा सकता हूँ लेकिन तुम्हारा गुरु नहीं बन सकता ।'

मास्टर महाशय के शब्दों को सुन योगानंद का हृदय भावना से भर गया । उनका आदरभाव बढ गया । वे गुरु बनने तैयार न हुए फिर भी योगानंद भक्तिभाव से प्रेरित होकर नियमित रूप से उनके पास जाने लगे । आकस्मिक रूप से उनके गुरु श्री युक्तेश्वर महाराज की उन्हें प्राप्ति हुई । गुरु ने स्वयं अपना परिचय दिया और उन्हें शिष्य के रुप में स्वीकारा ।

मास्टर महाशय के व्यक्तित्व को निरूपित करनेवाला यह प्रसंग कितना अनूठा है ? इसमें उनकी असाधारण विनम्रता, निरभीमानता, अखंड जाग्रति और कालदर्शी भविष्य-दृष्टि का दर्शन होता है । योगानंदजी ने इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए मास्टर महाशय की शक्ति का परिचय दिया है । गुरु करने की लगनवाले शिष्य तो बहुत मिलते हैं और शिष्य करने की अभिलाषा वाले गुरु भी बहुत मिलते हैं परंतु गुरुभाव से अतीत रहकर सेवा या सहायता करने की वृत्तिवाले मास्टर महाशय जैसे प्रातःस्मरणीय पुरुष तो कोई विरले ही होते हैं इसमें संदेह नहीं ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३२. तीर्थ की ताकत

ईस्वी सन १९४९ की बात है । उस वक्त मैं देवप्रयाग से निकलकर अमरनाथ की यात्रा करने गया था । ऊँचे ऊँछे हिमाच्छादित पर्वतों के बीच बसे उस तीर्थ के दर्शन से मुझे अवर्णनीय आनंद हुआ । वहाँ की प्राकृतिक सुषमा इतनी असाधारण, चित्ताकर्षक और नयनरम्य है कि जिसका कोई जवाब नहीं । इसे देख मन मुग्ध हो जाता है ।

काश्मीर को सृष्टि का स्वर्ग क्यों कहा जाता है यह बात इस पर से आसानी से समझी जा सकती है । कश्मीर का प्रवास करने के बाद मैं कलकत्ता गया, वहाँ कुछ दिन रहा । बाद में जगन्नाथपुरी गया । यह तीर्थ भी अच्छा है अलबत्त हिमालय की भाँति वहाँ हिमाच्छादित पर्वतश्रेणी नहीं है, गंगाजी भी नहीं है परंतु वहाँ विशाल सागर है, विशाल, स्वच्छ एवं सुंदर मंदिर है । इसे मंदिर कहीए या एक प्रकार का आध्यात्मिक पावरहाउस कहिए क्योंकि इससे कई साधकों को प्रकाश, प्रेरणा एवं शांति मिलती है । इसने कितने अध्यात्म-पथ के पथिकों के प्यासे प्राणों को प्रेम के पियुषपान से तृप्त, पुलकित, प्रसन्न व पावन बनाया है । शायद इसलिए भारत के चार बडे मंदिरो में इसकी गणना होती है ।

इस मंदिर के दर्शन से मुझे प्रसन्नता हुई । आनंद के वे दिन बडी तेजी से गुजरे किंतु उन्हीं दिनों मेरे मन में चिंता पैदा हो गई । मैं उस वक्त नवरात्री के दिनों में पानी पर उपवास करता था । नवरात्री करीब थी और वह व्रत मैं किस स्थान पर करूँगा इसका निर्धार नहीं कर सकता था । इसका शीघ्र निर्णय बहुत जरुरी था क्योंकि भादों जल्दी से गुजर रहा था ।

देवप्रयाग के जिस मकान में मैं रहता था, उसीमें रहना होता तो कोई दिक्कत न थी पर बारिश के तूफान की वजह से उसमें रहना मुश्किल हो गया था – शायद असंभवित भी । तो फिर कहाँ रहें ? ऋषिकेश जाएँ या गुजरात ? कोई निर्णय न हो सका । मैंने आखिरकार एक इलाज ढूँढा । वह काम ईश्वर पर छोड दिया । भगवान जगन्नाथजी के मंदिर में बैठ मैंने प्रभु से सच्चे दिल से प्रार्थना की, 'हे प्रभु! लोग आपके दर्शन को बडी दूर से आते है । इस तरह मैं भी प्रेमभक्ति से प्रेरित हो आ पहूँचा हूँ । अगर आप सच्चे हैं तो मुझे तीन दिन में उत्तर दें । मुझे कृपया स्पष्ट आदेश दें कि मुझे नवरात्री में कहाँ रहना है ?'

एक दिन गुजरा, दूसरा गुजरा पर कुछ न हुआ । मेरी चिंता बढ गई परंतु ईश्वर ने किस पर कृपा नहीं की ? इसके द्वार से खाली हाथ कौन जाता है ? तीसरे दिन बडे सबेरे, जब मैं अपनी सेज पर बैठे प्रार्थना कर रहा था कि मेरे ठीक सामने श्री रामकृष्ण परमहंसदेव की धर्मपत्नी श्री शारदादेवी प्रकट हुई । उन्होंने मुझसे कहा, 'क्यों चिंता में पड गये हो ?'

मैंने जवाब दिया, 'क्या आप नहीं जानती कि मैं नवरात्री कहाँ की जाय इस उलझन में पडा हूँ ?'

उन्होंने कहा, 'नवरात्री का व्रत पानी पर ही करना है और वह भी देवप्रयाग में ही । वहाँ चलो ।'

मैंने कहा, 'आश्रम की जगह तो बिगड गई है ।'

उन्होंने कहा, 'आपको आश्रम में नहीं रहना है बल्कि देवप्रयाग में मोटर स्टेन्ड के पास जो शेठ का मकान है उसमें रहना है ।'

मैंने पूछा, 'वह मकान खाली है क्या ?'

'खाली नहीं है,' उन्होंने कहा, 'उसमें एक अफसर रहता है पर आपकी व्यवस्था उधर ही होगी । आपको वहीं रहना है ।'

यह कहकर शारदादेवी अदृश्य हुई । मैंने सब बातें मेरी माताजी से कही । उस वक्त वे मेरे साथ ही रहती थीं ।

मंदिर में जाकर मैंने फिर स्तुति की । भादों शुक्ल की एकादशी को देवप्रयाग जाने के लिए हम चल पडें । ईश्वर ने मुझे ऐन मौके पर, तीन ही दिनों में पथप्रदर्शन किया इससे मेरे जीवन में ईश्वरकृपा का एक और प्रसंग उपस्थित हुआ ।

कभी कभी लोग मुझे प्रश्न करते हैं की हमारे तीर्थ अब भी जीवंत है, चेतना से भरें है या निष्प्राण और निर्जीव हो गये हैं ? मैं प्रत्युत्तर में उनको पूछता हूँ कि क्या आप चेतना से भरे हुए हैं ? तीर्थ तो जैसे पूर्व थे वैसे ही आज भी है – प्राणवान और चेतना से भरे हुए । अगर हमारी योग्यता हो तो हमें उसका अनुभव होगा । अगर हमारी योग्यता नहीं होगी तो वे हमें बेजान मालूम पडेंगे ।

*

कहाँ जगन्नाथपुरी और कहाँ देवप्रयाग ? भारत के दो छोर – एक पूरब का तो दूसरा उत्तर का । एक बंगाल में और दूसरा हिमालय में । बीच में अनेक नदियाँ और गाँव, पर्वत आदि । कितने वन और उपवन । इससे गुजरनेवाली रेलगाडी यह कह रही थी कि देश इतने वैविध्य और विशालता से भरा होने पर भी एक है, अखंड है, अविभाज्य है । उनके अंग भले ही भिन्न जान पडते हों पर उसकी आत्मा एक है । उसकी संस्कृति, उसके श्वास-प्रश्वास व धडकनें एक है । देश की यात्रा करनेवाला व्यक्ति इस एकता का अनुभव कर सकता है ।

इसी एकता का दर्शन करता हुआ मैं देवप्रयाग आ पहूँचा । ऋषिकेश से करीब ४५ मील की दूरी पर, अलकनंदा और भागीरथी के संगम पर बसा देवप्रयाग मेरे नैन और हृदय को आनंदविभोर करने लगा । देवप्रयाग स्थित मेरे आश्रम पर जाना मुश्किल था इसलिए मैं मोटर स्टेन्ड के पास रहनेवाले एक सज्जन के यहाँ ठहरा ।

दूसरे ही दिन नवरात्री शुरु हुई । जगन्नाथपुरी में शारदादेवी ने जो सुचना दी थी उसके मुताबिक मैंने केवल पानी पर उपवास शुरु किये । फिर भी मकान का प्रश्न अभी हल न होने से मन में चिंता थी । फिर भी हृदय में विश्वास था कि जो शक्ति मुझे इतनी दूर तक खींच लायी है वह आवश्यक प्रबंध अवश्य करेगी ।

इसी विचार से प्रेरित होकर दो भाइयों को साथ लेकर मैं उपवास के प्रथम दिन ही आश्रम की ओर निकल पडा । देख लूँ, आश्रम जाने का मार्ग है या नहीं ? आश्रम के मार्ग में एक शेठ का मकान आता था, जिसमें एक कश्मिरी रेशनींग ईन्सपेक्टर किराये पर रहेते थे । इस हकीकत का ज्ञान मुझे देवप्रयाग आने पर हुआ था । इससे यह साबित हुआ कि शारदादेवी के भविष्यकथन की इतनी बात सच है । परंतु इससे क्या ? अभी कथन पूर्णतया सिद्ध नहीं हुआ था । शारदादेवी ने कहा था, 'वह सज्जन मुझे अपने साथ रहने देंगे ।' वह कैसे सिद्ध होगा ? ईश्वर के लिए कुछ भी असंभवित नहीं है फिर भी मुझे यह विचार आ ही गया ।

यही सोचता हुआ मैं आश्रम के रास्ते पर होता हुआ शेठ के मकान पर वापस लौटा । वहाँ एक घटना घटी । मकान के कमरे का पर्दा उठाकर कश्मिरी इन्सपेक्टर बाहर आए और मुझे प्रणाम करते हुए कहने लगे, 'उस आश्रम में क्या आप ही रहते है ?'

मैंने कहा, 'हाँ, लेकिन अब तो वहाँ जाने का रास्ता ही बिगड गया है, वहाँ अब नहीं रहा जाता ।'

वे मुझे अत्यंत आग्रह करके मकान के भीतर ले गये । उन्होंने कुछ बातचीत की और स्वयं सहज रूप से कहने लगे, 'मेरी एक प्रार्थना है ।'

'क्या ?' मैंने पूछा ।

'आप यहाँ ही रहिएगा, इसी मकान में । मकान बहुत बडा है, मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी ।'

मैंने कहा, 'मकान बडा है यह सच है पर कल से मैं मौनव्रत रखनेवाला हूँ ।'

उन्होंने कहा, 'इसमें क्या ? मैं दिन में एकाध बार आपके दर्शन कर लूँगा तो भी मुझे आनंद होगा।'

आखिरकार मैंने उनकी बात स्वीकृत कर ली । उन्होंने एक फर्नीचरवाला कमरा मेरे लिए खाली करवाया । उनके नोकर को भेज मेरा सारा सामान मँगवा लिया । उसी रात से मैं वहाँ रहने लगा ।

कितनी अजीब है इश्वर की शक्ति ! वह किस स्थल पर, कब, किसके लिए काम करती है यह एक पहेली है । बुद्धि उसे समज सकती है पर उसका हल नहीं कर पाती । यह ऐसी पहेली है जिसे इश्वर-भक्त के सिवा कोई नहीं बुझा सकता । इस कृपा का लाभ उठाना चाहें तो पहले ईश्वर के भक्त, प्रेमी व शरणागत बनिये और उसीके लिए जिन्दगी बसर कीजिए । केवल बातों से कुछ नहीं होगा । जीवन को उसी के और रंग से रंग दें । इतना करने पर आपकी सभी चिंताओं को वह सम्हालेगा । यही मेरा अनुभव है ।

शारदादेवी की सुचनानुसार काश्मिरी सज्जन के साथ मैं उस मकान में देढ महिना रहा, नवरात्री के मेरे उपवास भी वहीं पूरे हुए ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३३. वैष्णव का अर्थ

ज्यादातर लोग धर्म के नाम पर संकीर्णता को बढावा देते है । अपना मनपसंद संप्रदाय ही सच्चा है, सर्वश्रेष्ठ है और दूसरे सब धर्म या संप्रदाय निरर्थक व निकम्मे है ऐसी विचारधारा वाले लोगों की संख्या कम नहीं है । एक तरह से देखा जाय तो ऐसे लोग नाना मनुष्यों के बीच भेदभाव की कृत्रिम दिवार खडी कर देते हैं और धर्म या संप्रदाय के नाम वितंडावाद, बहस, असहिष्णुता, वैर-द्वेष, विरोध व घर्षण पैदा कर देते है । ऐसे लोग अपने आपको तो हानि पहुँचाते ही है पर साथ ही जिस समाज में वे रहते है उसको भी हानि पहुँचाते है । वे तो बदनाम होते ही हैं, साथ में उनका धर्म भी बदनाम होता है । वे यह भूल जाते हैं कि सच्चा धर्म इन्सान को सच्चे अर्थ में इन्सान बनाता है । वह उसे समभावी व विशाल हृदय संपन्न मानव बनाता है । वह उसमें विवेक की ऐसी ज्योत जगाता है जिसके आलोक में वह सब प्रकार की कटुता व पूर्वग्रहों को खत्म कर देता है ।

ऐसे ज्ञानी पुरुष कभी मिल जाते है पर वे विरले होते है । जब उनसे मिलाप होता है तो हमारे अंतर में अकथ्य आनंद का अनुभव होता है और ऐसा प्रतीत हुए बिना नहीं रहता कि आज भी संसार में सच्चे मानव साँस ले रहे है । जगत में जो थोडी शांति या सुखानुभूति दृष्टिगत होती है वह ऐसे सज्जन सत्वगुण-संपन्न मनुष्यों पर आधारित है । हमारी पृथ्वी पर के ऐसे मानव-देवता को देख मन-मयूर नाच उठता है ।

यह बात मैं पालीताणा के मेरे प्रवास को याद कर कह रहा हूँ । प्रायः पाँच साल पहले मैं पालीताणा गया था । वहाँ के सुविख्यात जैन मंदिरो को देखा । वे मंदिर अत्यंत सुंदर व आकर्षक है इसमें संदेह नहीं । पर्वत के समुन्नत शिखर पर ऐसे रम्य मंदिरो को देख मुझे सचमुच प्रसन्नता व शांति हुई । उस दिन हजारों लोग उन मंदिरो के दर्शन के लिए आये थे । वे उन्हे देख दंग रह गये ।

थोडी ही देर में एक पालकी आई । उसमें एक धनिक स्त्री बैठी थी जिसकी देह गहनों से लदी थी । उसके साथ उनके परिवार के अन्य सदस्य भी थे । पालकीवाले कहार आराम करने बैठे तो वो औरत भी नीचे उतरी । हमारी साथ आये सज्जन ने उस स्त्री तथा अन्य सज्जनों को पहचान लिया और कहा, 'आप यहाँ कहाँ से ?'

'क्यों ? हम यात्रा करने नहीं आ सकते क्या ? भावनगर से दो-चार आदमीयों का साथ मिल गया तो सोचा चलो यात्रा पर ।' मंडली के भाई ने कहा ।

'किन्तु पालीताणा से क्या ताल्लुक ? तुम जैन थोडे ही हो ? तुम तो वैष्णव हो, वैष्णव ।'

'वैष्णव हूँ इसलिए तो पालीताणा आया हूँ, नहीं तो नहीं आता ।'

'यह कैसे मान लिया जाय ? पालीताणा तो जैनो का तीर्थधाम है ।' उस सज्जन को आश्चर्य हुआ।

'देखिये मैं आपको समझाता हूँ । विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक परब्रह्म परमात्मा, जो सब में निवास करते है, उनमें जो भावभक्ति रखते है और उनको जो मानते है वह वैष्णव । वह विष्णु क्या पालीताणा में नहीं है ? वह तो चराचर जगत में विद्यमान है । अतएव मैंने कहा, 'मैं वैष्णव हूँ इसलिये यहाँ आया हूँ ।' वैष्णव यानि सर्वव्यापक ईश्वर में माननेवाला उदारदिल इन्सान । कट्टर होता तो यहाँ क्यों आता ?'

आसपास के लोग यह सुन अचम्भे में पड गये । उन्होंने इसकी कल्पना तक न की थी । मुझे उस सज्जन का ज्ञान व विवेक देख आनंद हुआ । मैंने मन-ही-मन में उसको धन्यवाद दिया । मुझे

लगा, इतने विशाल हृदय और ऐसा सच्चा समझनेवाले मनुष्य कितने हैं ? अगर सब ऐसा सच्चा समजते हो तो कितना अच्छा ?

पालकी और वह परिवार आगे चला पर उसकी याद पीछे रह गई । इसे याद कर मैं भी आगे चलने लगा ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३४. धन की सिद्धि

इस्वी सन १९४५ के पूस महिने की बात है ।

माँ आनंदमयी को मिलने की इच्छा से मैं देवप्रयाग से आल्मोडा गया था । देवप्रयाग से हरिद्वार, बरेली और काठगोदाम होकर मैं आल्मोडा में पातालदेवी स्थित माँ आनंदमयी के आश्रम पहूँचा । आश्रम देख मुझे प्रसन्नता हुई । चारों ओर आसमान को छूनेवाले ऊँचे ऊँचे पर्वत और इस बीच आश्रम । कितना सुंदर दृश्य था !

परंतु आश्रम में माँ आनंदयी न थी । तीन साल से वे वहाँ न आई थी । आश्रम के प्रबंधक संन्यासी महाराज ने कहा, 'निकट के भविष्य में माताजी के आने की कोई संभावना नहीं है ।'

मुझे लगा की माताजी की मुलाकात असंभवित हो तो आश्रम में रहने का कोई अर्थ नहीं है । इससे तो मैं मेरे देवप्रयाग स्थित शांत आश्रम में रहूँ तो कैसा ? मैंने देवप्रयाग जाने का निश्चय कर लिया पर केवल निश्चय से देवप्रयाग थोडे ही पहूँच सकते है ? इसके लिए पैसे चाहिए । जेब में देखा तो केवल दो रूपये थे । कैसे जाएँगे ?

हृदय के अंतरतम से मैंने प्रार्थना की, 'हे प्रभु ! आपके भरोसे पर ही मैं यहाँ आया हूँ । अब आप सहायता करेंगे तभी वापस जा सकूँगा । अगर आप सचमुच भक्तों के रखवाले हो और उनके योगक्षेम को वहन करनेवाले हों तो मुझे किसी भी तरह सहायता किजीये जिससे मैं बिना किसी मुसीबत के यहाँ से बिदा ले सकूँ ।'

दयालु प्रभु ने मेरी प्रार्थना सुन ली । उसी दिन सुबह एक साधुपुरुष मेरे समीप आये । उम्र बीस साल, लंबे काले-काले बाल, लंबा उनी झब्बा धारण किये हुए । उन्होंने मुझे नमस्कार किया । मुझे यह देख प्रसन्नता हुई ।

मैंने पूछा, 'कहाँ से आते हो ?'

उन्हें मौनव्रत था इसलिए झोली से स्लेट-पेन निकालकर लिखने लगे, 'कैलास मानसरोवर से आता हूँ ।'

मुझे लगा, कैलास से इस ऋतु में कैसे आ सकते हैं ? जाडे के मौसम में वहाँ आना-जाना असंभव होता है । उन्होंने आगे लिखा, 'एकाध साल से मानसरोवर रहता था और अब बदरीनाथ जाना है इसलिए इस ओर आया हूँ ।'

मैंने उनसे एक स्वलिखित गीत, जो मैंने कुछ-ही दिन पहले लिखा था, पढ सुनाया । इससे खुश होकर वे कहने लगे, 'मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ ।' वे सब बातें लिखकर, हिंदी में कर रहें थे ।

मैंने कहा, 'आप मेरी क्या सेवा करोगे ? तुम तो फक्कड मालूम पडते हो । तुम्हारे पास क्या है ?'

उन्होंने हँसते हुए जवाब दिया, 'ऐसा नहीं है, मैं सचमुच आपकी सेवा करना चाहता हूँ । भरोंसा करके तो देखो ।'

और फिर क्या था, उन्होंने झोली से एक थैली निकाली । वह सीली हुई और छोटी-सी थी ।

उन्होंने लिखकर पूछा, 'कितने रूपये चाहिए ? जब तक आप इन्कार नहीं करेंगे तब तक इसमें से रूपये निकलते रहेंगे । मेरे पास इस बिना इस थैली के कुछ भी नहीं है ।'

मुझे अत्यंत आश्चर्य हुआ । क्यों न हो ? आखिर बात भी वैसी थी । थैली की करामत सुन मेरा मन सोचने लगा । क्या एसी शक्ति संभवित है ? मुझे सहायता देने आनेवाले यह महापुरुष कोई समर्थ योगी होंगे या फिर साक्षात् ईश्वर ?

परंतु उन्होंने तो थैली खोली । इससे चमकते हुए नये रुपये निकलने लगे, मानो टंकसाल से ही निकल रहे हों । मुझे ३५ रुपये की आवश्यकता थी मगर उन्होंने बडे आग्रह से चालिस दिये ।

उन्होंने लिखा, ‘आप पर प्रेम होने से मैंने इस थैली का उपयोग किया है । अन्यथा इसे गुप्त रखता हूँ । मेरी अनेक सिद्धियों में से यह एक है ।’

मैं तो यह देख दंग रह गया । रानीखेत तक हम दोनों मोटर में एकसाथ थे । फिर वे जुदा हुए तब मैंने पूछा, ‘आपका शुभ नाम ?’

उन्होंने लिखा, ‘रामदास ।’

वे कोई समर्थ योगी थी, राम के दास थे, ईश्वर थे या साक्षात् राम थे यह बात मैं आज भी सोच रहा हूँ, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि वे सचमुच अत्यंत असाधारण महापुरुष थे ।

३५. स्वामी रामतीर्थ

दयानंद, तिलक, लजपतराय, रामतीर्थ, विवेकानंद, अरविंद – ये थे वे चमत्कारी पुरुष जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दि में प्रकट होकर अपनी अनन्य तेजस्वीता, विलक्षण बुद्धि और अपराजेय संकल्प के बल पर देश की कायापलट कर दी थी । इनमें स्वामी रामतीर्थ का जीवन अत्यंत विलक्षण तथा प्रेरणादायक था । बुद्धि की तीक्ष्णता में वे शंकराचार्य के समान थे, हृदय की करुणा व सुकुमारता में ईसा मसीह के समान, तथा विरक्ति में शुकदेव, दत्तात्रेय या अष्टावक्र के समान थे । पिछले सौ सालों के आध्यात्मिक या सांस्कृतिक इतिहास में जिनका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है वे दोनों – विवेकानंद एवं रामतीर्थ – दोनों असाधारण, विशिष्ट प्रतिभायुक्त विभूति थे ।

एक बार वे दोनों लाहोर में मिल गये ।

उस वक्त स्वामी विवेकानंद अमरिका व इंग्लेंड में भारतीय धर्म व दर्शन का विजयध्वज फहराकर भारत लौटे थे । लोग उनका आदर करते थे, संस्थाएँ उनका स्वागत करती थी । लाहौर में भी उनका प्रवचन आयोजित किया गया था । उस वेदांतकेसरी की अमृतवाणी सुनने के लिए लोगों की भीड लग गई थी । स्वामी रामतीर्थ भी वहाँ थे । वे उस वक्त स्वामी रामतीर्थ न थे पर तीर्थराम थे । लाहौर कोलेज के गणित के प्रमुख प्राध्यापक होने पर भी समय-समय पर हरिद्वार, ऋषिकेश जाया करते थे । आध्यात्मिक प्रवृत्तियों में उन्हें रुचि थी । वे आत्मिक साधना किया करते थे ।

विवेकानंद की वाणी सुनकर वे बडे प्रसन्न हुए । हीरे की परीक्षा जौहरी ही जानता है न ? वे भी हीरे ही थे । विवेकानंद ने भी उनकी आत्मा को पहचान लिया । 'उच्चोच्च आत्मा' उन्होंने कहा ।

रामतीर्थ ने विवेकानंदजी को घडी भेंट में दी । विवेकानंद ने इन्कार किया । उनको येनकेन प्रकारेण समजाने की चेष्टा की । कहा, 'हम दोनों में क्या अंतर है ? तुम्हारे पास घडी है वह मेरे पास ही है न ? मैं रखूँ इससे तो आप ही रक्खें तो अच्छा है ।'

तीर्थराम मान गये । विवेकानंद के त्याग, ज्ञान व निर्मल चरित्र की उन पर गहरी छाप पडी । देश के लिए कुछ भी कर देने की और इससे पहले एकांतवास में रहने की भावना उत्पन्न हो गई ।

इसी भावना से तीर्थराम ने प्राध्यापकी छोड दी । तीर्थराम से वे रामतीर्थ बने । हिमालय की वशिष्ठ गुहा में एवं टिहरी के जंगलो में रहकर कठिन तपश्चर्या की और शांति की प्राप्ति की । अद्वैत वेदांत की व्यावहारिक व्याख्या करके भारतीय संस्कृति का अपने देश में ही नहीं, भारत के बाहर के देशों में भी प्रचार व प्रसार किया ।

अमरिका तो उनके पीछे पागल-सा हो गया । भगवा वस्त्रधारी उन स्वामी रामतीर्थ को सुनने विशाल जनसमूह इकट्ठा हो जाता था । उनके असाधारण व अदभुत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर लोग इसा मसिह से उनकी तुलना करने लगे । वाह री किस्मत, रामतीर्थ की प्रसिद्धि सर्वत्र हुई ।

अमरिका के उस वक्त के प्रमुख रुझवेल्ट थे । जब उन्होंने उनकी ख्याति सुनी, उनसे मुलाकात की इच्छा जताई और मिलने का प्रबंध किया । मुलाकात से रुझवेल्ट बडे खुश हुए । उनकी शंकाओं का समाधान हो गया । भारत में भी ऐसे महापुरुष बसते है यह जानकर भारत की ओर उनका आदर बढ गया ।

'मैं आपकी क्या खिदमत करुँ ?' उन्होंने पूछा, 'आप चाहे सो सेवा करने मैं तैयार हूँ ।'

कोई मामूली आदमी होता तो अमरिका में एकाध आश्रम निर्मीत कर देता अथवा तो संपत्ति की माँग करता । परंतु रामतीर्थ ऐसी कच्ची मिट्टी के न थे । देश के लोगों के दुःख दूर करने की भावना उनके दिल में फूट-फूटकर भरी थी । देशप्रेम से प्रेरित होकर ही तो वे विदेश गये थे ।

उन्होंने तुरंत उत्तर दिया, 'अगर आपके दिल में सेवा करने की सच्ची भावना है तो भारत जैसे गरीब देश के विद्यार्थी यहाँ मुफ्त पढ सके इस हेतु से स्कोलरशीप का प्रबंध किजीये ।'

प्रमुख रुझवेल्ट ने वह व्यवस्था कर दी । रामतीर्थ व भारत के लिए उनकी जो सम्मान-भावना थी उसमें वृद्धि हुई । रामतीर्थ को वे अत्यंत आदर से देखने लगे ।

इतिहास जानता है कि भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन के लिए रुझवेल्ट ने भी अपना योगदान दिया था । भारत के प्रति उनके विशेष लगाव के लिए स्वामी रामतीर्थ से उनकी मुलाकात भी कारणभूत थी ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३६. महापुरुष का आत्मभाव

स्वामी रामतीर्थ अद्वैत वेदांत की जीती-जागती प्रतिमूर्ति थे । वेदांत के सारस्वरूप अभेदभाव के नशे में वे हमेशा मस्त रहते थे । जगत के छोटे-बडे नाना पदार्थों में परमात्मा का दर्शन करते थे । इसके अतिरिक्त समस्त जगत को परमात्मा के प्रत्यक्ष प्रतीक के रूप में निहारते । एकत्वदर्शन उनका सहज स्वभाव बन गया था ।

वे अपने आप को आत्मिक जगत के बेताज बादशाह मानते थे और अपने नाम का परिचय रामबादशाह के नाम से देते थे । हाँ, वैसे तो बादशाह को चिंता, विषाद, भय, रागद्वेष, भेदभाव, अशांति आदि होता है, किंतु राम-बादशाह तो इन सब भावनाओं से परे थे ।

उनका दर्शन व सत्संग करनेवालों को शांति व सुख की प्राप्ति होती थी । एकाध बार उनके समागम में आनेवाले को भी उनके जादूभरे व्यक्तित्व की चिरस्थायी और असाधारण छाप पडती, इसमें संदेह नहीं ।

उनका वेदांत केवल उनके विचारों व वाणी तक ही सिमीत न था अपितु उनके अणु अणु में ओतप्रोत हो व्यवहार के प्रत्येक पहलू में मूर्तिमंत हुआ था । इसीलिए उनके व्यक्तित्व में एक प्रकार की विद्युत शक्ति थी जिसका प्रभाव संबंधित सब पर न्यूनाधिक रूप में होता ही था ।

उनके जीवन में संमिश्रित होनेवाली वेदांती मस्ती की एक घटना जानने योग्य है । इससे उनके असाधारण व्यक्तित्व की झाँकी अवश्य मिलेगी ।

स्वामी विवेकानंद की भाँति भारतीय धर्म, दर्शन, व संस्कृति का संदेश परदेश में पहूँचाने और उसके द्वारा भारत के राष्ट्रीय गौरव को बढाने वे कटिबद्ध थे ।

प्रोफेसर तीर्थराम से स्वामी रामतीर्थ बने उन युवान संन्यासी में उत्कृष्ट मेधा थी, उच्च भावना थी । अपने देशवासी और दूसरों के लिये कुछ कर देने की तमन्ना और कर्मयोग की भावना थी ।

जब स्टीमर में बैठ वे भारत से अमरिका पहूँचे तब कोई परिचय-पत्र उनके पास नहीं था । प्रथम कहाँ ठहरना, उसका निर्णय भी उन्होंने नहीं किया था । गीता की भाषा में कहें तो, 'सर्व भूतस्थमात्मानं सर्व भूतानिचात्मनि' अर्थात् आत्मा में सब भूत प्राणी जीते हैं, सब में अंतर्निहित आत्मा को देखते और अनुभूत करते हुए वे अमरिका के समुद्रतट पर आ पहुँचे ।

अन्य यात्री बारी बारी से स्टीमर से उतरने लगे । उनको लेने बहुत से स्नेही या स्वजन आये थे । स्वामी रामतीर्थ को नीचे उतरने की कोई जल्दी नहीं थी । उनके चेहरे पर किसी प्रकार की अस्वस्थता या व्यग्रता न थी ।

इस बीच अपने मित्रों, साथीयों, स्वजनों का सत्कार करनेवाले आदमीयों में से एक सज्जन स्वामी रामतीर्थ के पास आये । उन्हें एकटक निहारने लगे । अंत में जब उनसे न रहा गया तो बोले, 'आपके लिबास से लगता है कि आप भारतीय है ।'

रामतीर्थ ने सर हिलाया और कहा, 'हाँ, मैं भारत से आ रहा हूँ ।'

'आप यहाँ ठहरेंगे ?'

'हाँ ।'

'आपको कोई लेने नहीं आया ?'

'आया है ।'

'कौन ? यहाँ तो कोई नहीं दिखता ।'

'मुझे लेने आनेवाले ये रहे ।'

'कहाँ ?'

'क्यों ? आप ही तो आये हैं मुझे लेने ।'

ऐसा कहकर रामतीर्थ ने उस अमरिकन सदगृहस्थ की पीठ पर हाथ रखा । हाथ रखते ही अपने शरीर में जाने कोई दैवी विद्युत शक्ति प्रवेशित हुई हो ऐसा अनुभव उस सदगृहस्थ को होने लगा । उनका अंतर आत्मीयता से भर उठा । उन्होंने भारत के सपूत स्वामी रामतीर्थ को अपने घर पधारने व रहने का निमंत्रण दिया ।

रामतीर्थ उनके मेहमान बने । ज्यों ज्यों परिचय बढता गया, त्यों त्यों स्वामीजी के प्रति उनका अनुराग व आदर भी बढता ही गया । आखिर वे इनके भक्त व शिष्य बन गये ।

अमरिकन प्रजा को अपने अनोखे अलौकिक व्यक्तित्व से प्रभावित करनेवाले स्वामी रामतीर्थ को लोग जिन्दा ईसा मसिह के नाम से पहचानने लगे ।

ऐसा था उन महापुरुष का आत्मभाव । वे हमेंशा, जीवन की प्रत्येक पल, वेदांत में ही जीते थे । शांति भी ऐसे वेदांत से मिलती है - केवल वेदांत की बातों से नहीं, अपितु उसके आचरण से ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३७. जगदंबा के तीन स्वरूप

शास्त्र कहते हैं कि परमात्मा की पवित्र प्रखर प्रेमभक्ति का प्रवाह जिसके जीवन में बहने लगता है उसका जीवन सार्थक हो जाता है । परमात्मप्रेम का पवित्र प्रकाश जिसके प्राण में छा जाता है उसका प्राण प्रसन्न व पुलकित हो जाता है । उनके नयनों में सिवाय स्नेह के कुछ नहीं रहेता । वह सब काल व सर्वत्र परमात्मा को देखता रहता है । 'अखिल ब्रह्मांड में एक तुम श्री हरि' - यह वचन उनके संबंध में सच साबित होता है ।

श्री रामकृष्ण परमहंसदेव उस शास्त्रकथन के मूर्तिमंत अवतार या स्वरूप जैसे ही थे । उनमें उत्पन्न हुई परमात्मा की पावन प्रेमभक्ति समय बीतने पर चरमसीमा पर पहूँची थी । उसी प्रखर प्रेमभक्ति ने उनमें आमूल परिवर्तन पैदा कर दिया था और उनके अणु-अणु में समाकर उन्हें अलौकिक बना दिया था ।

वे परमात्मा की प्रेमभक्ति में डूबे रहते थे यह कहना तनिक भी अनुचित नहीं । परमात्मा को वे माँ के रूप में भजते और माँ कहके ही पुकारते । जगदंबा के पद गाते, सुनते, सुनाते या याद करते हुए भावविभोर बन जाते और भावसमाधि में डूब जाते । भगवान की भक्ति के प्रभाव से उनका अंतर इतना निर्मल बन गया था कि उसमें कामवासना के अंकुर ही पैदा नहीं होते थे । हमेशा निर्मलता का ही अनुभव करते । अपनी पवित्रता की कसौटी करने वे अपनी पत्नी शारदादेवी के साथ एक ही खाट पर छ महिने तक सोये थे ।

इसका उल्लेख करते हुए शारदादेवी ने बाद में कहा, 'वे मेरे साथ एक मासूम बालक की तरह शांति से पडे रहते । कभी कभी मैं रात को जागती तो वे मेरे पास ही पलंग पर समाधि में बैठे नजर आते । मुझे किसी प्रकार का भय न लगे इसलिए मुझे उन्होंने समाधि वह अजीब अनुभूति की जानकारी दी थी और कहा था, यह अवस्था देख डरना मत । कभी लंबे समय तक मैं होश में न आऊँ तो मेरे कान में प्रणव का या भगवान के किसी भी नाम का उच्चार करना । इससे मैं होश में आ जाऊँगा । उनकी गहरी समाधि की अवस्था में उनके कथनानुसार मुझे कितने ही बार वे प्रयोग करने पडे थे । वे समाधि में से जब जागते तब मुझे संतोष होता । आरंभ में यह सब मुझे अजनबी-सा लगा पर बाद में मैं उनसे अभ्यस्त हो गई और उन्हें साधना में सहायक बनती गई ।'

रामकृष्णदेव की भाँति शारदादेवी को भी इसके लिए धन्यवाद देना चाहिए । वे भी नखशीख निर्मल व वासनारहित थी और इसीलिए अपने पति की साधना में सहायक बन सकी । वे भी उच्च कोटि की साधिका बनी ।

कितना पवित्र, असाधारण, और उदात्त होगा उन दोनों का दांपत्य-संबंध ? जो केवल शरीर को ही स्त्रीपुरुष के विवाहित जीवन का लक्ष्य, प्रयोजन या लायसंस मानते है वे उनके इस अदभूत दिव्य आत्मसंबंध को नहीं समज पाएँगे । लेकिन इससे वह मिथ्या तो नहीं हो जाता, उसका मूल्य कम नहीं होता ।

यही प्रेमभक्ति के परिणाम स्वरूप रामकृष्णदेव सब में जगदंबा के अपार्थिव प्रकाश की झाँकी करते थे । यह उनके लिए सहज हो गया था । ऐसे दिव्य जीवन में फिर कामुकता कैसे पैदा हो ? इस संबंध में एक और सुंदर प्रसंग का स्मरण हो आता है ।

एक बार रात के समय रामकृष्णदेव सो रहे थे और शारदादेवी उनकी चरणसेवा कर रही थी । उसी वक्त उन्हें एकाएक विचार हुआ कि रामकृष्णदेव की मनोवृत्ति कहाँ भटक रही है, मैं जरा देखूँ तो सही । इसी विचार से प्रेरित होकर उन्होंने पूछा, 'कहीए तो, मैं आपकी कौन होती हूँ ?'

रामकृष्णदेव ने तत्क्षण उत्तर दिया, 'क्यों ? इसमें क्या पूछना ? एक स्वरूप में माँ मंदिर में विराजित होती है, दूसरे रूप में जननी बनकर मुझे जन्म दिया और तीसरे रूप में वे तुम्हारे द्वारा मेरे पैर दबा रही है । आप तीनों एक है, आपमें कोई भेद नहीं ऐसा मेरा विश्वास है ।'

शारदादेवी तो यह सुन दंग रह गई ।

आज, जब की यह घटना हुए कई साल बीत गये हैं, रामकृष्णदेव के उस लाक्षणिक उत्तर से अनेक व्यक्ति आश्चर्य में पड जाएँगे । किन्तु इसमें अचरज की कोई बात नहीं है । संसार के प्रत्येक पदार्थ में ईश्वर की झाँकी करना आदर्श भक्त का स्वभाव होता है । इसी स्वभाव की प्रतिध्वनि उस घटना में ध्वनित होती है ।

धन्य हैं रामकृष्णदेव और धन्य हैं शारदादेवी ! उनके चरणों में कोटिकोटि प्रणाम ! हम उन्हें प्रार्थना करें कि अहेतुकी अलौकिक कृपावृष्टि करके आप हमारे अंतर को भी वैसा ही अलौकिक बनायें और परमात्मभाव से भर दें !

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३८. महर्षि दयानंद का वैराग्य

पिछले देढसौ सालों में सनातन हिन्दु धर्म व जाति में और उसके द्वारा समस्त संसार में प्रेरणा व प्रकाश प्रदान करनेवाले और नवजीवन की लहर पैदा करनेवाले दो प्रतापी महापुरुष हो गये । दोनों ज्योतिर्धर थे । दोनों ने जनकल्याण का कार्य किया । दोनों परम मेधावी, त्यागी, बैरागी और राष्ट्रप्रेमी थे । एक का नाम था वेदांत केसरी, रामकृष्ण मिशन के प्रणेता स्वामी विवेकानंद और दूसरे थे आर्यसमाज के संस्थापक, आर्षदृष्टा, महर्षि दयानंद ।

महर्षि दयानंद जब महर्षि के रूप में ख्यात नहीं हुए थे और अज्ञात परिव्राजक के रूप में भारत की यात्रा कर रहे थे तब घुमते-घुमते हिमालय के सुप्रसिद्ध स्थल उखीमठ में आ पहुँचे ।

कुछ समय उन्होंने वहाँ शांति से गुजारा था । उस वक्त उनकी उम्र छोटी थी पर योग्यता बडी थी । उनमें वैराग्य व सत्य की लहरें तरंगित हो रही थी ।

उखीमठ के महंत पर इनका सिक्का जम गया । उन्होंने दयानंदजी को अपना उत्तराधिकारी बनाने का निश्चय कर लिया । एक बार उनके समक्ष इसका प्रस्ताव भी पेश किया और हमेशा के लिए उखीमठ में ही रहकर वहाँ की गद्दी स्वीकारने के लिए आग्रह किया ।

दयानंद के जीवन का यह एक बडा प्रलोभन था । उखीमठ जैसे सुंदर व समृद्ध स्थल के महंत होने की महत्ता और दूसरी भोग-वैभव-युक्त सुखी जीवन की संभावना । परंतु त्याग, संयम और वैराग्य की प्रबल भावनावाले, भावी महर्षि होने के लिए ही अवतीर्ण, दयानंदजी को वह पद तनिक भी चलायमान न कर सका । वे अडिग रहे और बोले, 'यह छोटा-सा मठ अपनी समस्त संपत्ति तथा समृद्धि के साथ मुझे मेरे ध्येय से च्युत नहीं कर सकता । यह पद, प्रतिष्ठा और संपत्ति मेरे मन को मोहित नहीं कर सकती । मैं सुख, संपत्ति और सत्ता में बंधने के लिए नहीं अपितु बंधे हुओं को छुड़ाने के लिए आया हूँ ।'

और यह कह वे उस मठ के बाहर निकल पडे । महंत उन्हें देखते रह गये ।

ऐसा उत्कृष्ट और उत्कट था महर्षि दयानंद का वैराग्य । इसी वैराग्य, त्याग और सत्य से प्रेरित होकर उन्होंने भविष्य में जो महान कार्य किया यह सर्वविदित है । इसी कारण वे अमर हो गये ।

ध्येय की सतत स्मृति और निष्ठा मनुष्य को सदा जाग्रत बनाये रखती है और प्रलोभनों से गुजरकर आगे बढने की क्षमता प्रदान करती है । दयानंद ने अपने जीवन के द्वारा यह करके दिखाया ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

३९. दूसरों की सेवा का धर्म सबसे बडा

गुरु नानकदेव के जीवन के जीवन की एक छोटी-सी पर प्रेरणात्मक घटना है । उस वक्त उन्होंने भारत की कई बार यात्राएँ की थी । अपने सुंदर, सारवाही उपदेशों से लोगों के दिलों को जीत लिया था, तथा बडे ही लोकप्रिय हो गये थे । कई लोग उन्हें गुरु मानते और उनका अत्यंत आदर करते थे ।

भारत की यात्रा के दौरान एक बार दयालपुर के निकट के गाँव के किसी मुसलमान किसान को उपदेश देते हुए उन्होंने कहा, 'भाई, सत्कर्म रूपी श्रेष्ठ हल से अपने खेत को जोतना, उसमें नाम का पवित्र बीज बोना, सत्य का जल पिलाना और इस तरह सर्वोतम किसान बनना । स्वर्ग-नर्क की चिंता किये बिना श्रद्धा को बढाना । धन या बाह्य सौंदर्य के नशे में मत रहना । केवल बहस से कुछ नहीं होगा ।'

यह उपदेश सुन एक सर्राफ बोल उठा, 'ऐसी गहन बातें यह कैसे समझ सकेगा ?' तब नानकदेव ने कहा, 'जो दीन है वह दीनबंधु के पास ही है । जिस धन का संग्रह तू कर रहा है वह तेरे साथ नहीं आनेवाला । जिनके हृदय में ईश्वर का विशुद्ध प्रेम है, सेवा है, वे गरीब-जन ही ईश्वरकृपा के अधिकारी हैं, तुझ जैसे धनिक नहीं ।'

*

नानकदेव को दीनहीन जनों पर अत्यधिक प्यार था । एक बार वे नासिक के गरीब आदमी के यहाँ मेहमान बने थे और जमीन पर लेटे थे । यह देख एक अमीर ने कहा, 'देखिये, मैंने आपसे मेरे घर आनेको कहा था पर आप न आये और अब तकलीफ उठा रहे हैं ।'

नानक ने जवाब दिया, 'भाई, मुझे कोई तकलीफ नहीं है । ईश्वर उसी पर अपने अनुग्रह-अमृत की वृष्टि करता है जो संसार के नश्वर सुखों से वंचित हो । मैं तो इस घर में ईश्वर के एक महान कृपापात्र के साथ रहता हूँ । मैं तो चाहता हूँ कि इस आदमी की तरह मुझ पर भी ईश्वर कृपा बरसायें ।'

इस उत्तर सुन अमीर कुछ न बोला ।

*

एक ओर प्रसंग उल्लेखनीय है । करतारपुर में नानक एक सभा भरके बैठे थे । शिष्य, जिज्ञासु, प्रसंशक ज्यादा तादाद में थे । एकाएक एक शीख उठकर चलने लगा ।

नानकदेव ने बीच में उठकर जाने का कारण पूछा तो उसने कहा, 'हाँ, मुझे इस तरह बाहर नहीं जाना चाहिए यह जानता हूँ, पर मैं मजबूर हूँ । दूसरा कोई चारा नहीं है । मेरा एक दोस्त बीमार है । इसके जीने की भी कोई उम्मीद नहीं । मैं उनकी सेवा में हूँ फिर भी आपके दर्शन की इच्छा का लोभ-संवरण न कर सका इसलिए यहाँ आया था ।'

गुरु नानक सहसा गंभीर बन गये । बोले, 'अगर ऐसा है तो तू मेरे आदेशानुसार नहीं चला है । मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया तूने ।'

'कौन सी आज्ञा ?'

'नहीं समझा ? बीमार की शूश्रुषा करने कि आज्ञा । यहाँ मेरे दर्शन को आने की आवश्यकता न थी । सच्ची आवश्यकता तो बीमार मित्र की सेवा करने की थी । इसलिए उसे अकेला छोड तू यहाँ आया यह अच्छा नहीं किया । मेरे दर्शन करने की अपेक्षा मेरे संदेश को जीवन में अनुवादित करने की जरुरत

है । जो जीवमात्र में परमेश्वर को देख उन्हीं की सेवा में तत्पर रहता है वही धन्य है । सिक्ख को चाहिए की वह सदैव संतोषी, सत्परायण व करुणार्द्र बनें । किसी को भी अपने कर्तव्य का त्याग नहीं करना है ।'

गुरु नानकदेव के इन शब्दों ने सब पर नया प्रकाश डाला । उस सिक्ख सज्जन को भी नयी प्रेरणा मिली । उसने अपने मन को बडे प्यार से अपने बीमार मित्र की सेवा में लगा दिया ।

नानकदेव की वह घटना और उपदेश के वे शब्द पुराने हो गये है, परंतु उनका संदेश तनिक भी पुराना नहीं हुआ । वह सनातन है । इस संदेश का आचरण करने की आवश्यकता है । लोग सत्संग करते है, देवदर्शन जाते हैं, तीर्थयात्रा करते हैं, वह अच्छा है, उसका अपने स्थान में महत्व भी है किन्तु उसका आश्रय लेनेवाला यदि घर, परिवार या समाज संबंधित अपने कर्तव्य के प्रति उदासीन रहे या उसकी उपेक्षा करे तो यह आदरणीय या अभिनंदनीय नहीं है । दूसरों की सेवा का धर्म सबसे बडा है यह सदैव याद रखना है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

४०. हरिदास और हरिदासी

चैतन्य महाप्रभु ने अपने जीवन का अठारह साल जितना लंबा और अंतिम समय गुजारा उस स्थान जगन्नाथपुरी के प्रसिद्ध तीर्थस्थान स्थित राधाकांत मठ है । इससे थोडी दूर एक वृक्ष है । यह वृक्ष दर्शनीय है । इसका महत्व ऐतिहासिक सत्य के कारण विशेष है क्योंकि वहाँ रहकर चैतन्य महाप्रभु के शिष्य हरिदासजी ने बहुत बरसों तपश्चर्या की थी ।

हरिदासजी यों तो मूलतः यवन थे पर उनको भगवान कृष्ण से अत्यधिक प्यार था । पूर्वसंस्कारो से प्रेरित हो उनका मन कृष्ण में लगा था, कृष्णदर्शन के लिए बेताब हुआ था ।

'जातपात पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई' - इस लोकोक्ति के अनुसार वे भगवान के परम भक्त बन गये थे । इसी प्राचीन बकुल वृक्ष के तले बैठ हरिदासजी भगवान के जप और ध्यान में तल्लीन हो जाते । वे प्रतिदिन निश्चित संख्या में जप करते । चैतन्य महाप्रभु उनसे बडा प्यार करते । यह देख दूसरे लोग ईर्ष्या करने लगे ।

इसी ईर्ष्या से प्रेरित हो उन्होंने जगन्नाथपुरी कि एक वेश्या को बडा इनाम देने की लालच देकर हरिदासजी को अपनी मोहिनी के जाल में फँसाने का कार्य करने के लिए तैयार की । इस तरह उन्हें चरित्रभ्रष्ट बनाने कि योजना की ।

वेश्या को लगा, हरिदास का पतन करना यह कौन सी बडी बात है ! मैंने तो ऐसे कई पुरुषों को मंत्रमुग्ध या मोहित कर दिया है । मेरा सौंदर्य ही ऐसा बेमिसाल और असाधारण है कि इसकी संमोहन शक्ति से कोई टक्कर नहीं ले सकता । सुरमा भी इससे मजबूर हो जाते हैं तो हरिदास की तो विसात ही क्या ?

वह तो बन-ठनकर हरिदासजी को मोहित करने चली । हरिदासजी उस वक्त ध्यान में बैठे थे । उनकी आँखे बन्द थी और उनके अंतरतम से प्रकटित प्रेम का पवित्र प्रवाह आँसू के रुप में बह रहा था । वेश्या उनके जागने की प्रतिक्षा में सारा दिन बैठी रही पर हरिदासजी उठे ही नहीं ।

दूसरे दिन भी वही दशा हुई । वेश्या आई पर हरिदासजी ने तो आँखे नहीं खोली ।

तीसरे दिन भी हरिदासजी ध्यान में लीन रहे ।

चौथे दिन जब उन्होंने आँखे खोली तो वेश्या उनके पैरों पड गई ।

हरिदासजी ने उसके वहाँ आनेका कारण पूछा तो बोली, 'कुछ लोगों के कहने पर मैं आपका पतन करने आई थी किन्तु आश्चर्य की बात है कि तीन दिन तक आपको निहारने से मेरा मन परिवर्तित हो गया है । आपको कौन-से रस की प्राप्ति हुई है जिसके आगे संसार के सभी विषय या पदार्थ नीरस लगते हैं ?'

हरिदासजी ने उत्तर दिया, 'यह रस कोई दूजा नहीं पर भगवान का प्रेमरस है । इस रस का प्रभाव ही ऐसा है कि इसका पान करने के बाद और कोई रस पीनेकी इच्छा नहीं होती ।'

'मैंने जीवनभर पाप किये हैं, मेरे उद्धार का कोई उपाय है ?'

'भगवान का नाम जीवमात्र के परित्राण के लिये काफि है । इसका आश्रय लेनेवाले को कोई चिंता नहीं करनी पडती ।'

वेश्या के आग्रह से हरिदासजी ने उन्हें अपने प्रिय जप – हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे' जपने का उपदेश दिया और फिर भगवान के ध्यान में लीन होने आँखे बन्द कर ली ।

वेश्या ने अपनी सारी संपत्ति दे दी और सादा व संयमित जीवन जीते हुए जप में अपने मन को लगा दिया ।

उसने हरिदास की शिष्या होने से अपना नाम हरिदासी रखा और शेष जीवन को कृतार्थ किया । महापुरुष के एक क्षण का भी संग संसार-सागर को तैरने की नौका समान हो जाता है । यह उक्ति उसके लिए सच्ची साबित हुई ।

इस पल पल परिवर्तनशील पृथ्वी पर कोई हमेशा के लिए जिन्दा नहीं रह सकता । जो आता है वह बिदा होता है । इस नियमानुसार एक रोज संत हरिदास का देहांत हुआ और इसके बाद हरिदासी ने भी देहत्याग किया ।

जगन्नाथपुरी के समुद्रतट पर आज भी हरिदासजी की समाधि विद्यमान है । निकट में ही हरिदासी की समाधि भी है । इसको देखकर हमें अवश्य आदरभाव होता है कि 'सत्संगति कथमपि न हरोति पुंसाम्' अर्थात् सत्संगति मनुष्य का क्या नहीं करती ? सबकुछ कर सकती है । वह उसको नया अवतार धरती है और नर से नारायण बनाती है ।

तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है कि उसमें स्नान करने से कौआ भी कोयल बनता है, बगुला हँस बनता है । 'मज्जन फल पेखिअ तत्काला, काक होई पिक बक ही मराला ।'

धन्य है हरिदास और धन्य है हरिदासी !

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

४१. देश का गौरव

अमेरिका थोडे समय रहकर वापस भारत आनेवाले एक सज्जन ने अपना अनुभव कह सुनाया । स्वानुभव का यह प्रसंग बरसों पहले का है फिर भी याद रखने योग्य, प्रेरक व उल्लेखनीय है ।

जब वे एक बार अमेरिका में एक रास्ते से गुजर रहे थे कि मुसलाधार बारिश होने लगी । समझ में नहीं आया कि अब क्या किया जाय ? साथ में उनकी पत्नी भी थी ।

बरसाद से बचने के लिए वे सपत्नीक एक दुकान के पास जा खडे हुए । इतने में वहाँ एक कार आके खडी रही जिसमें एक अपरिचित पुरुष अपनी पत्नी के साथ बैठे थे । उसने बडे ही प्रेम से अपनी कार में बैठने की बिनती की या यों कहिए कि मोटर में बैठने का निमंत्रण दिया ।

परिस्थिति ऐसी थी की उनके निमंत्रण को स्वीकारने के सिवा कोई चारा न था । एक तो वे अकेले न थे और बारिश बन्द होने की संभावना न थी । उन अमेरिकन सज्जन को बिलकुल नजदीक ही जाना था फिर भी पहले उन्होंने भारतीय दंपती को उनके स्थान पर पहुँचा देना उचित समझा और भारतीय दम्पती ऐन मौके की यह अदभुत सहायता से गदगद् हो गये । मोटर से उतरते वक्त उस अमरिकन सज्जन का आभार माना और बदले में कुछ स्वीकार करने को कहा तो उन्होंने स्पष्ट इन्कार किया । उन्होंने कहा, 'मैंने तो एक मानव के रूप में आपकी सेवा की है । बदले में मुझे कुछ नहीं चाहिए । आप इस घटना को भूलना मत और आपके देश में जाकर कहना कि अमरिकन सेवाभावी होते है ।'

'इससे आपको क्या मिलेगा ? मैं तो आपको कुछ देना चाहता हूँ ।'

अमेरिकन ने उत्तर दिया, 'मुझे क्या नहीं मिलेगा ? इससे मेरे देश का गौरव बढेगा और इससे मुझे सबकुछ मिल जाएगा ।'

इस जवाब ने भारतीय सज्जन को निरुत्तर बना दिया ।

अमेरिकन भाई तो मोटर में बिदा हो गये लेकिन इस उत्तम व्यवहार से उन्होंने जो सुवास छोडी वह अमिट, अक्षय रह गई । देखिये, उनके दिल में अपने देश के प्रति कितना प्रेम था ? ऐसा देशप्रेम और देश के लिए ऐसा गौरव जिन देशवासियों में पैदा हो और इससे प्रेरित होकर वे छोटे-बडे व्यवहार करें तो उस देशको आगे बढते हुए, प्रगति करते हुए देर न लगें । उस देश पर ईश्वर के आशीर्वाद उतरें, इसमें क्या संदेह ?

अमरिका और उनके जैसे दूसरे देश धर्मपरायण नहीं माने जाते परंतु भारत तो धर्मपरायण कहा जाता है । भारतवासीयों को धर्म का संदेश देने की जरूरत नहीं । सेवाधर्म तो उसे विरासत में मिला है फिर भी आज उनकी परिस्थिति कैसी है यह सब जानते है । भारत की जनता, छोटे-बडे सभी व्यक्ति अपने सभी कर्मों में या जीवन के व्यवहार में देशप्रेम, देशहित और देशगौरव को ध्यान में रखते हुए प्रवृत्त हो तो देश का कलेवर ही बदल जाए इसमें कोई संदेह नहीं । आखिरकार तो एक-एक व्यक्ति मिलकर ही देश बनता है ।

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

४२. जानकीनाथ सहाय करे जब

जनवरी १९६७ की बात है ।

राजस्थान के नगर कोटा में स्थित बी. एड कोलेज में इनाम वितरण का समारोह चल रहा था । इसमें मुझे भी निमंत्रण मिला था ।

समारोह का प्रारंभिक कार्यक्रम पूरा होने के पश्चात संगीत-स्पर्धा में इनाम-प्राप्त स्त्रीपुरुषों ने बारी-बारी से अपने गीत गाये । इस बीच एक तेरह-चौदह साल के लडके ने हार्मोनियम पर संत तुलसीदास रचित वह सुंदर गीत छेडा ।

'जानकीनाथ सहाय करे जब, कौन बिगाड सके नर तेरो ?

सूरज मंगल सोम भृगुसुत बुध अरु गुरु वरदायक तेरो ।

राहु केतु की नहीं गम्यता, संग शनिचर होत उचेरो,

जानकीनाथ सहाय करे जब, कौन बिगाड सके नर तेरो ?'

गीत के सुमधुर स्वर सुनकर सब दंग रह गये । गीत का लय और सूर तो सुंदर था ही, उतना ही सुंदर था गानेवाला का कंठ । ईश्वर ने उसे अति अदभुत एवं अमृतमय कंठ दिया था । इस कंठ से अदभुत सुधासमान शब्द का आस्वाद लेकर श्रोताजन आनंदविभोर हो गये । सब के दिलों से अभिनंदन निकल पडे ।

गीत पूरा होने पर कोलेज का सभाखंड तालियों की गडगडाहट से गुँज ऊठा । सबने प्रसन्नता प्रकट की । इतना ही नहीं उस समारोह के प्रधान अतिथि के रूप में आए हुए कलेक्टर श्री सूद ने भी ताली देने में अपना स्वर मिलाया । किन्तु केवल ताली देकर वे बैठे न रह पाये । उन्होंने लडके को धन्यवाद भी दिया और उसके बारे में जानकारी भी हासिल की ।

उस लडके के पिता चल बसे थे । वे देशप्रेम से प्रेरित हो देश के लिए कुरबान हुए थे । यह जान कलेक्टर के मन में अनुपम भावना पैदा हुई । उन्होंने लडके को बुलाया और दूसरे दिन अपने बंगले पर आने के लिये कहा ।

लडके ने हामी भरी ।

'कल शाम को मुझे मिलना । मैं घर पर ही हूँगा । मेरा बंगला देखा है क्या ?' कलेक्टर ने पूछा।

लडके ने हाँ कही और कलेक्टर ने अपना पूरा पता दिया । लडका समझ गया । कलेक्टर ने उसे अपने यहाँ फिर आनेका कहा और समारोह के प्रमुख को एवं कोलेज के प्रधानाचार्य से कहा, 'इस लडके कि आर्थिक हालत अच्छी नहीं लगती । मैं उसे यथाशक्ति – यथायोग्य सहायता अवश्य दूँगा ।'

लडका बडा प्रसन्न होकर अपनी जगह पर आके बैठ गया । नयी उमंग और नयी आशा उसमें पैदा हो गई ।

कलेक्टर की भावना देख मुझे बडी खुशी हुई । खास तो इस बात से कि वह लडका पितृहीन, निम्न आर्थिक स्थितिवाला, दीनहीन था लेकीन भाविजीवन की संभावनायुक्त और सहायता देने के लिए पूर्णतया सुयोग्य था । ऐसे साधारण बालक पर बताई गई माया, ममता सचमुच अनमोल थी । मुझे लगा कि अब लडके का जीवन सचमुच आसान बनेगा । कलेक्टर की सहानुभूति, सहृदयता एवं सामान्य व्यक्ति को सहायता देने कि वृत्ति के कारण मेरे मन में आदर की भावना पैदा हुई ।

और क्यों न होगी ? हमारे देश के छोटे-बडे अफसर और नेता यदि इसी तरह नम्रता से युक्त होकर दूसरों को मदद करने की भावना रक्खे और उस भावना का आचरण करे तो उनकी सहृदयता और सेवाभावना जनसमाज के लिए कितनी उपयोगी व आशीर्वादरूप हो सके ? कितनी कायापलट करनेवाली साबित हो ? अफसरों और नेताओं के दिलों में ही क्यों, सबके दिल में अगर यह भावना पैदा हो तो ? तो कितना अच्छा । सारे समाज की शक्ल बदल जाय ।

वे सहृदयी सज्जन कलेक्टर साहब श्री सूद, वह साधारण गरीब पर मधुर कंठवाला लडका, वह समारोह ... आज भी मेरी नजरों के सामने उपस्थित होता है । जो गीत उसने गाया वह गीत उसके जीवन का जीता-जागता उदाहरण बन गया । जानकीनाथ अगर सहाय करे तो उसका कौन बिगाड सके ? कोई नहीं । इतना ही नहीं, बिगडी हुई या बिगडती हुई जिन्दगी सँवर जाय । जानकीनाथ ही उस लडके की बिगडी जिन्दगी बनाना चाहते थे । तभी तो एकाएक आकस्मिक रूप से कलेक्टर का मिलाप करवा दिया और इससे भी आगे बढकर कलेक्टर के दिल में भावना पैदा की ।

कुछ भी हो, वह घटना मुझे बडी पावन लगी । इसी यादगार घटना को अक्षरदेह में अंकित करते हुए मैं फुला नहीं समाता । मुझे इस बात का विश्वास है कि उस लडके ने कलेक्टर की सूचनानुसार दूसरे दिन उनकी मुलाकात ली होगी और कलेक्टर ने उसे आवश्यक सहायता भी की होगी और इससे उस लडके के जीवन में नवजीवन की प्राणवान लहर दौड रही होगी ।

'जानकीनाथ सहाय करे जब ...' तो क्या नही हो ?

इस गीत की पंक्ति मेरे कानों में ही नहीं परंतु समुचे अंतर में, अणुअणु में गूँज उठती है । धन्य है वह पंक्ति, धन्य उसका गायक, धन्य है उन श्रोताजनों को और धन्य है उसको जीवन में अनुवादित करनेवाले !

☼ ☼ ☼ ☼ ☼

४३. दूधवाले का प्रसंग

कश्मीर सचमुच सौंदर्य की भूमि है इतना ही नहीं, वह शांति-भूमि भी है । प्राकृतिक सुषमा सभर उस भूमि में सुंदरता व शांति की कितनी अदभुत व अलौकिक असाधारण सामग्री भरी पडी है । उसके पर्वतों की शोभा तो देखते ही बनती है । देवदार, चीड, व चीनार की अगणित कतारों से सुशोभित पर्वतमाला पहली नजर में ही देखनेवालों को नयनाकर्षित करती हैं । उनका मनमयूर नाचने लगता है ।

उस मनोहारी पर्वतश्रेणियों का दर्शन करता हुआ यात्री आगे बढता है । ज्यों ही वह आगे बढता जाता है, उसके आगे नैसर्गिक सौंदर्य का अमूल्य भंडार खुलता जाता है । अन्ततः हिमकिरीट पर्वतों का दर्शन भी होता है, बर्फ पर चलना भी पडता है । इस तरह श्रीनगर से पहलगाँव, पहलगाँव से चंदनवाडी, शेषनाग, पंचतरणी और अमरनाथ तक आ पहूँचता है । वहाँ अभुतपूर्व दर्शन से आत्मविभोर हो जीवन की सार्थकता की अनुभूति करता है । यात्री का श्रम यहाँ सफल होता है । वहाँ है क्या ? पर्वत की छोटी-सी गुफा में स्वयंनिर्मित बर्फ का शिवलिंग नजर आता है । यह देख यात्री दंग रह जाते है । हजारों लोगोंने इस दर्शन का लाभ उठाया है और कई लोग प्रतिवर्ष हिमालय के उस पुराण-प्रसिद्ध तीर्थस्थान की यात्रा करते हैं ।

हमने भी उस अलौकिक स्थान की यात्रा की । अमरनाथ जब पाँच मील की दूरी पर था, हमने डेरा डाला । वहाँ एक घटना हुई जो हमेशा के लिए याद रह गई । उस घटना को याद कर आज भी अनुपम आनंद की अनुभूति होती है ।

शेषनाग के अतिशय शीत स्थान से आगे बढकर बर्फ से गुजरते हुए हम जब पंचतरणी पहुँचे तब दोपहर हो चुकी थी । ठंडी से पुरा शरीर और सब अवयव काँप उठे थे । स्नानादि करके हम शाक-पुरी ले आये पर संतोष न हुआ । मैं चाय नहीं पीता था और वहाँ दूध भी उपलब्ध न था । अतः मुझे लगा की आज भूखों मरना पडेगा ।

साथ आये सज्जन ने कहा, 'ईश्वर की कृपा की सच्ची कसौटी ऐसे घोर पर्वतीय प्रदेश में ही होती है । आपकी दूध की आवश्यकता की पूर्ति यदि परमात्मा करें तो उनमें हमें श्रद्धा उत्पन्न हो ।'

मैंने कहा, 'हमारी श्रद्धा उत्पन्न करने ईश्वर काम करेगा ? कब, क्या करना, यह सब उनके हाथ में है । अगर उसे ठीक लगेगा तो दूध भी हमें देगा । वह सर्वसमर्थ है । हमें किसकी जरूरत है, वह जानता है ।'

इस बातचीत के दौरान हमारे डेरे के करीब एक पहाडी आदमी आया । उसने उनी काली कामली ओढी थी । मस्तक पर उनी टोपी थी । मेरी ओर देखते हुए हँसकर पूछा, 'आप दूध लेंगे क्या ?'

मुझे लगा क्या यह आदमी मजाक कर रहा है ? उसके पास दूध तो है नहीं और दूध की बात कर रहा है ?

उसने कहा, 'आप मजाक मत समझिये । मेरे पास दूध है ।'

यह कहकर उसने अपनी कामली में से दूध का मटका निकाला । हम चकित हो गये ।

'कहिए, कितना दूध चाहिए ?' उसने पूछा ।

हमें सोच में डूबे देख उसने कहा, 'सारा मटका ले लो । यहाँ पर दूध मिलना मुश्किल है, इसी लिये काम लगेगा ।'

हमने पूछा, 'तुम्हारा स्थान कहाँ है ? कहाँ से आते हो ?'

उसने हँसकर कहा, 'आपको इससे क्या मतलब ? मेरा गाँव यहाँ पर ही है, कुछ दूरी पर लेकिन उससे आपको क्या मिलेगा ? आप दूध ले लो ।'

आखिरकार हमने उससे दूध ले ही लिया । वह प्रसन्न होकर बोला, 'कल भी इसी समय दूध लाऊँगा ।' और देखते ही देखते वह न जाने कहाँ चला गया ।

दूध ताजा और सरस था । मुझे तृप्ति हुई । दूसरे दिन भी जब हम अमरनाथ के दर्शन कर पंचतरणी लौटे तब उस पहाडी आदमीने हमको दूध दिया ।

दस मील के प्रदेश में कोई पशुपंछी भी नहीं रह सकता ऐसी ठंडी में यह दूधवाला कहाँ से आता था, यह आश्चर्य था । दूसरा आश्चर्य यह था कि वह केवल हमारे डेरे पर ही आ पहूँचता और हमें ही दूध देकर बिदा हो जाता । दूसरे डेरे पर वह नजर ही नहीं डालता ।

परमकृपालु परमात्मा ही मानों हमारी मुसीबत देखकर दूधवाले बन गये थे । ईश्वर अपने भले या बुरे, छोटे या बडे भक्त की परवाह करता है । इस बात का विश्वास मुझे इस घटना से हुआ । ईश्वर क्या नहीं कर सकता, यही प्रश्न है । केवल उसमें हमारा प्रेम व विश्वास होना चाहिए ।

(समाप्त)

About the Author
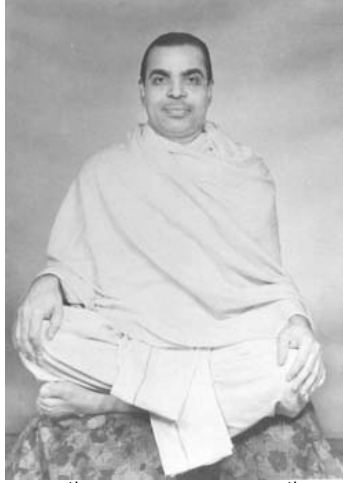
(Aug 15th 1921 - Mar 18th 1984)

Author of more than hundred books, Mahatma Shri Yogeshwarji was a self-realized saint, an accomplished yogi, an excellent orator and an above par spiritual poet and writer. In a fascinating life spanning more than six decades, Shri Yogeshwarji trod the path of spiritual attainments single handedly. He dared to dream of attaining heights of spirituality without guidance of any embodied spiritual master and thus defied popular myths prevalent among the seekers of spiritual path. He blazed an illuminating path for others to follow.

Born to a poor Brahmin farmer in a small village near Ahmedabad in Gujarat, Shri Yogeshwarji lost his father at the tender age of 9. He was taken to a Hindu orphanage in Mumbai for further studies. However, God's wish was to make him pursue a different path. He left for Himalayas early in his youth at the age of 20 and thereafter made holy Himalayas his abode for penance for nearly two decades. During his stay there, he came across a number of known and unknown saints and sages. He was blessed by divine visions of many deities and highly illumined souls like Raman Maharshi and Sai Baba of Shirdi among others.

Yogeshwarji's experiences in spirituality were vivid, unusual and amazing. He succeeded in scaling the highest peak of self-realization resulting in direct communication with the Almighty. He was also blessed with extraordinary spiritual powers (siddhis) illustrated in ancient Yogic scriptures. After achieving full grace of Mother Goddess, he started to share the nectar for the benefit of mankind. He traveled to various parts of India as well as abroad on spiritual mission where he received enthusiastic welcome.

He wrote more than 100 books on various subjects and explored all form of literature. His autobiography 'Prakash Na Panthe' - much sought after by spiritual aspirants worldwide, is translated in Hindi as well as English. A large collection of his lectures in form of audio cassettes are also available.

For more than thirty years, Yogeshwarji kept his mother (Mataji Jyotirmayi) with him. Yogeshwarji was known among saints of his time as Matrubhakta Mahatma. Shri Yogeshwarji left his physical body on March 18th 1984, while delivering a lecture at Laxminarayan Temple, Kandivali in Mumbai.

Shri Yogeshwarji left behind him a spiritual legacy in the form of Maa Sarveshwari. It has been ages since we have come across a saint of Yogeshwarji's caliber and magnitude. His manifestation will continue to provide divine inspiration for the generations to come.

*

શ્રી યોગેશ્વરજીનું સાહિત્યિક પ્રદાન

આત્મકથા પ્રકાશના પંથે ▪ પ્રકાશના પંથે (સંક્ષિપ્ત) ▪ **प्रकाश पथ का यात्री** ▪ Steps towards Eternity

અનુવાદ રમણ મહર્ષિની સુખદ સંનિધિમાં ▪ ભારતના આધ્યાત્મિક રહસ્યની ખોજમાં ▪ હિમગીરીમાં યોગી

અનુભવો દિવ્ય અનુભૂતિઓ ▪ શ્રેય અને સાધના ▪ **श्रेय और साधना**

કાવ્યો અક્ષત ▪ અનંત સૂર ▪ બિંદુ ▪ ગાંધી ગૌરવ ▪ સાંઈ સંગીત ▪ સનાતન સંગીત ▪ તર્પણ ▪ Tunes unto the infinite

કાવ્યાનુવાદ ચંડીપાઠ ▪ રામચરિતમાનસ ▪ રામાયણ દર્શન ▪ સરળ ગીતા ▪ શિવમહિમ્નસ્તોત્ર ▪ શિવ પાર્વતી પ્રસંગ ▪ સુંદર કાંડ ▪ વિષ્ણુસહસ્ત્રનામ

ગીતો ફૂલવાડી ▪ હિમાલય અમારો ▪ રશ્મિ ▪ સ્મૃતિ

ચિંતન બ્રહ્મસૂત્ર ▪ ગીતા દર્શન ▪ ગીતાનું સંગીત ▪ ગીતા સંદેશ ▪ ઈશાવાસ્યોપનિષદ ▪ ઉપનિષદનું અમૃત ▪ ઉપનિષદનો અમર વારસો ▪ પ્રેમભક્તિની પગદંડી ▪ શ્રીમદ્ ભાગવત ▪ યોગ દર્શન

લેખ આરાધના ▪ આત્માની અમૃતવાણી ▪ ચિંતામણી ▪ ધ્યાન સાધના ▪ Essence of Gita ▪ ગીતા તત્વ વિચાર ▪ જીવન વિકાસના સોપાન ▪ પ્રભુ પ્રાપ્તિનો પંથ ▪ પ્રાર્થના સાધના છે ▪ સાધના ▪ તીર્થયાત્રા ▪ યોગમિમાંસા

ભજનો આલાપ ▪ આરતી ▪ અભિપ્સા ▪ દ્યુતિ ▪ પ્રસાદ ▪ સ્વર્ગીય સૂર ▪ તુલસીદલ

જીવનચરિત્ર ભગવાન રમણ મહર્ષિ - જીવન અને કાર્ય

પ્રવચનો અમર જીવન ▪ કર્મયોગ ▪ પાતંજલ યોગદર્શન

પ્રસંગો ધૂપ સુગંધ ▪ કળીમાંથી ફૂલ ▪ મહાભારતના મોતી ▪ પરબનાં પાણી ▪ સંત સમાગમ ▪ સત્સંગ ▪ સંત સૌરભ

પત્રો હિમાલયનાં પત્રો

પ્રશ્નોત્તરી અધ્યાત્મનો અર્ક ▪ ધર્મનો મર્મ ▪ ધર્મનો સાક્ષાત્કાર ▪ ઈશ્વર દર્શન

નવલકથા આગ ▪ અગ્નિપરીક્ષા ▪ ગોપીપ્રેમ ▪ કાદવ અને કમળ ▪ કાયાકલ્પ ▪ કૃષ્ણ રુકમિણી ▪ પરભવની પ્રીત ▪ રક્ષા ▪ સમર્પણ ▪ પરિક્ષિત ▪ પરિમલ ▪ પ્રીત પુરાની ▪ પ્રેમ અને વાસના ▪ રસેશ્વરી ▪ ઉત્તરપથ ▪ યોગાનુયોગ

સુવાક્યો પરબડી ▪ સર્વમંગલ

વાર્તાઓ રોશની

*